खंड

3

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

इकाई 12

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय 199

इकाई 13

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य 217

इकाई 14

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक) – भाग 1 231

इकाई 15

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक) – भाग 2 256

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खण्ड 3 का परिचय

'संस्कृत नाटक' पाठ्यक्रम का यह तृतीय खण्ड आपके लिए प्रस्तुत है। इस खण्ड में 4 इकाइयाँ हैं। इस खण्ड की सभी इकाइयाँ कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से सम्बद्ध हैं। महाकवि कालिदास का संस्कृत साहित्य में मूर्धन्य स्थान है। उन्होंने तीन नाटकों का प्रणयन किया। उनके नाटक में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विद्वानों के समक्ष विशेष रूप से आदर को प्राप्त करता है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाले इस नाटक में सात अंक हैं जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह एवं पुनर्मिलन की कथा का वर्णन है। इस खण्ड में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के वैशिष्ट्य से परिचित होंगे। इसके साथ ही आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक के संवादों एवं श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है, जिनका अर्थ जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है। इन शब्दों का अर्थ जानकर आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 महाकवि कालिदास का परिचय

12.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय

- 12.3.1 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु
- 12.3.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के घटनाक्रम का समय
- 12.3.3 महाकवि कालिदास की नाट्यकला और शैली

12.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

- 12.4.1 दुष्यन्त का चरित्र-चित्रण
- 12.4.2 शकुन्तला का चरित्र-चित्रण
- 12.4.3 कण्व का चरित्र-चित्रण
- 12.4.4 अनसूया और प्रियंवदा का चरित्र-चित्रण

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि कालिदास के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु का अध्ययन कर सकेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रमुख पात्रों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- दुष्यन्त के आदर्श चरित को जान सकेंगे।
- महाकवि कालिदास की नाट्यकला और शैली से परिचित होंगे।

12.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में दृश्य काव्य का विशेष महत्त्व है। दृश्य काव्य को रूपक, रूप और नाटक भी कहते हैं। संस्कृत नाट्य साहित्य में महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विशेष स्थान रखता है। कालिदास उज्जयिनी के निवासी थे और उन्होंने काली की कृपा से कवित्व शक्ति प्राप्त की थी। विद्वानों ने उनका काल प्रथम शताब्दी ई.पू. स्वीकार किया है। उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य और नाटक का प्रणयन किया। उनके नाटकों में अभिज्ञानशाकुन्तलम् आज भी पाठकों को अपनी ओर अकर्षित करने में पूर्णतः सक्षम है। जर्मन कवि गेटे ने इस नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सात अंकों के इस नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह और पुनर्मिलन का महाकवि ने वर्णन किया है। इनके नाटक के अध्ययन के

पश्चात् यह ज्ञात होता है कि घटना संयोजन में सौष्ठव, सार्थकता, रचना कौशल, ध्वन्यात्मकता, रस, अलंकार आदि के वर्णन में महाकवि ने दक्षता प्राप्त की है। कालिदास उपमा अलंकार के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। उनकी उपमायें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कालिदास पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी विशेष निपुण हैं। उनके पात्र सरल, सुशील, उदार और माननीय संवेदनाओं से युक्त हैं। इस प्रकार इस इकाई में आप महाकवि कालिदास का परिचय, अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय और अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित होंगे।

12.2 महाकवि कालिदास का परिचय

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार हैं किन्तु भारतवर्ष के लिए यह खेद का विषय है कि उस श्रेष्ठ नाटककार के सम्बन्ध में हमारे पास कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उनके माता-पिता कौन थे? ये कहाँ के निवासी थे? इत्यादि। महाकवि के विषय में जो किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं उसी के आधार पर विद्वान् समुदाय उनके जन्म-स्थान का निर्धारण करने का प्रयास करते हैं। कश्मीर के विद्वान् इन्हें कश्मीरी, बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् इन्हें उज्जयिनी का निवासी मानते हैं। महाकवि ने अपने मेघदूत नामक खण्डकाव्य में उज्जैन के प्रति जिस प्रकार का आदर व्यक्त किया है उससे यह सिद्ध होता है कि ये उज्जयिनी के निवासी थे।

महाकवि कालिदास के विषय में एक किंवदन्ति प्रसिद्ध है जिसके अनुसार ये वज्रमूर्ख थे। विद्वानों ने षड़यन्त्र रचकर इनका विवाह परम विदुषी विद्योत्तमा से करवा दिया। पत्नी से अपमानित होकर इन्होंने काली की उपासना करके काव्य रचना करने की शक्ति प्राप्त की। घर लौटकर इन्होंने अपनी पत्नी से कहा 'अनावृत कपाटं द्वारं देहि।' इस पर पत्नी ने 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' कहकर उत्तर दिया। कालिदास ने पत्नी के इन्हीं तीन शब्दों को आधार बनाकर कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् और रघुवंशम् ग्रन्थों की रचना की। इनके विषय में एक अन्य कथा भी प्रचलित है जिसके अनुसार लंका के राजा कुमारदास से इनका सम्बन्ध था। वहाँ धन के लोभवश एक वेश्या ने इनकी हत्या करवाई थी। इस कथा के अनुसार इनका देहान्त लंका में हुआ था। तीसरी कथा के अनुसार विक्रम संवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य के नौ रत्नों में एक थे। एक अन्य कथा के अनुसार ये राजा भोज के आश्रित कवि थे। इस प्रकार महाकवि कालिदास के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

महाकवि के जीवन-वृत्त के समान इनके काल को लेकर भी अनेक मत प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वान् इनका समय छठीं शताब्दी ई., कुछ चतुर्थ शताब्दी ई. और कुछ प्रथम शताब्दी ई.पू. निर्धारित करते हैं और इस विषय में अपने प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं किन्तु कालिदास का जन्म प्रथम शताब्दी ई.पू. मानना अधिक तर्क-संगत लगता है क्योंकि ये विक्रमादित्य के नौ रत्नों में एक थे जिनका समय प्रथम शताब्दी ई.पू. था। इनके ग्रन्थों में प्राप्त अपाणिनीय प्रयोगों की प्रचुरता के आधार पर भी इन्हें प्रथम शताब्दी ई.पू. के आस-पास का माना जा सकता है। अश्वघोष पर कालिदास के प्रभाव को देखकर भी इनका समय प्रथम शताब्दी ई.पू. माना जाता है। मालविकाग्निमित्रम् नाटक के नायक अग्निमित्र के विषय में अप्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों को उद्घाटित करने के परिणामस्वरूप भी इनका समय प्रथम शताब्दी ई.पू. माना जाता है।

कर्तृत्व – महाकवि कालिदास ने 'रघुवंशम्' और 'कुमारसम्भवम्' नामक दो महाकाव्य, 'मेघदूतम्' और 'ऋतुसंहारम्' नामक दो खण्डकाव्य तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' , 'विक्रमोर्वशीयम्' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक का प्रणयन कर संस्कृत साहित्य को समृद्धि प्रदान की है। यहाँ हम उनके प्रणीत नाटकों के विषय में जानेंगे।

i) **मालविकाग्निमित्रम्** – यह पाँच अंकों का नाटक है। इस नाटक में मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। मालविका विदर्भ के राजपूत माधवसेन की बहन है। दायादों द्वारा राज्य ले लिए जाने पर आमात्य सुमति मालविका को सुरक्षित रखने के लिए छिपा देता है। डाकुओं द्वारा वन में सुमति की हत्या कर दी जाती है और मालविका वीरसेन को मिल जाती है। उसके पश्चात् वह दासी के रूप में महारानी धारिणी के पास रहती है और राजा अग्निमित्र उस पर अनुरक्त हो जाता है। पूरा विवरण ज्ञात होने पर रानी धारिणी की अनुमति से राजा अग्निमित्र और मालविका का विवाह हो जाता है।

ii) **विक्रमोर्वशीयम्** – यह पाँच अंकों का त्रोटक नामक रूपक है। इसमें राजा पुरुरवा और उर्वशी एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं। उर्वशी का प्रेमपत्र विदूषक की भूल से देवी औशीनरी को मिल जाता है और वह राजा को डाँटती है। भरतमुनि द्वारा निर्देशित नाटक में उर्वशी 'पुरुषोत्तम विष्णु' के नाम के स्थान पर 'पुरुरवा' का नाम ले लेती है। अतः भरतमुनि उसको शाप दे देते हैं कि पुत्र-दर्शन तक वह मर्त्यलोक में रहेगी। उर्वशी राजा के पास रहती है। राजा एक विद्याधर कुमारी को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। क्रुद्ध होकर उर्वशी कार्तिकेय के उपवन में चली जाती है। कार्तिकेय के नियमानुसार उपवन में जाने से वह लता बन जाती है। राजा अत्यन्त शोक व्यक्त करता है। आकाशवाणी सुनकर राजा संगमनीय मणि को लेकर लता रूपी उर्वशी का आलिंगन कर उसको पुनः पूर्ववत् रूप में प्राप्त करता है। उर्वशी अपने पुत्र को च्यवन ऋषि के आश्राम में छिपाकर रखती है। पुत्रदर्शन प्राप्ति के पश्चात् उर्वशी के पुनः स्वर्गगमन के आदेश से राजा दुःखी है। उसी समय नारद आकर यह सूचित करते हैं कि इन्द्र को युद्ध में पुरुरवा की सहायता चाहिए और इन्द्र कृपा करके उर्वशी को सदैव के लिए पुरुरवा के साथ रहने के लिए कहते हैं।

iii) **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** – महाकवि कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ नाटक है। इसमें राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय कथा का वर्णन किया गया है। इस नाटक का चतुर्थ अंक विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में प्रकृति-प्रेम और पुत्री-प्रेम का उदात्त रूप देखने को मिलता है। इस नाटक के कथानक का विस्तृत अध्ययन आप इकाई के अगले अंश में करेंगे।

12.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय

इकाई के इस अंश में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु, उसके घटनाक्रम का समय तथा महाकवि कालिदास की नाट्यकला एवं शैली का अध्ययन करेंगे।

12.3.1 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु

महाकवि कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक संस्कृत साहित्य का ही नहीं अपितु विश्व साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। जर्मन विद्वान् गेटे ने इस नाटक की

भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का कथानक महाभारत के आदिपर्व में वर्णित 'शकुन्तलोपाख्यान' तथा पद्म पुराण के 'स्वर्गखण्ड' की कथा पर आधारित है। महाकवि कालिदास के शृंगार रस प्रधान इस नाटक में सात अंक हैं। राजा दुष्यन्त इस नाटक के नायक, शकुन्तला नायिका तथा माढव्य विदूषक है। सात अंकों वाले इस नाटक में महाकवि ने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, विरह तथा पुनर्मिलन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। प्रिय विद्यार्थियों! इकाई के इस अंश में आप अंकानुसार अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु का अध्ययन करेंगे।

प्रथम अंक – प्रथम अंक का प्रारम्भ नान्दी पाठ से होता है। नान्दी पाठ में महाकवि ने शिव की स्तुति की है। नान्दी पाठ के पश्चात् महाकवि कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। आश्रम के मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त सारथि के साथ प्रवेश करते हैं। वह मृग को मारना ही चाहते हैं कि उसी समय तपस्वी का प्रवेश होता है और वह राजा दुष्यन्त से निवेदन करता है कि यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिये। तपस्वी के निवेदन के पश्चात् राजा धनुष से प्रत्यंचा उतार लेते हैं, तपस्वी भी उनको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देकर उनसे प्रार्थना करता है कि आश्रम में जाकर अतिथि सत्कार स्वीकार करें। वह राजा को बताता है कि इस आश्रम के कुलपति कण्व सोमतीर्थ गए हैं। अतः अतिथि सत्कार का कार्य शकुन्तला कर रही है। राजा सारथि को बाहर छोड़कर सामान्य वेष में आश्रम में प्रवेश करते हैं। वहाँ वह वृक्षों में जल डालती हुई तीन अत्यन्त सुन्दर कन्याओं को देखता है। उन कन्याओं में एक शकुन्तला है। राजा उस पर आसक्त हो जाता है उसी समय शकुन्तला को एक भौंरा परेशान करने लगता है और वह उस भौंरे से रक्षा के लिए प्रार्थना करती है। उस समय राजा दुष्यन्त वृक्ष की ओट से बाहर आकर शकुन्तला की रक्षा करते हैं। वह शकुन्तला और उसकी सखियों से वार्तालाप करते हैं तभी उन्हें यह ज्ञात होता है कि शकुन्तला ऋषि विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा कण्व ऋषि की पालिता पुत्री है। शकुन्तला को क्षत्रिय कन्या जानकर दुष्यन्त उस पर आसक्त हो जाता है तथा उससे विवाह का विचार दृढ करता है। इसी बीच आश्रम में एक विक्षुब्ध हाथी प्रवेश करता है। राजा अपने सैनिकों को रोकने के लिए चला जाता है। शकुन्तला भी अपनी सखियों अनसूया और प्रियंवदा के साथ प्रस्थान करती है। इसी घटना के साथ अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक – नाटक के द्वितीय अंक में महाकवि कालिदास ने शकुन्तला पर आसक्त राजा दुष्यन्त की कामी अवस्था का वर्णन किया है। विदूषक राजा के समक्ष शिकार के विपक्ष में अपने विचार प्रकट करता है, तत्पश्चात् राजा शिकार खेलने का विचार छोड़ देते हैं और सेनापति को भी मना कर देते हैं। वह सैनिकों को आदेश देते हैं कि आश्रमवासियों को कोई दुःख न दें। राजा दुष्यन्त विदूषक को बताते हैं कि वह शकुन्तला पर आसक्त हैं और ऐसा कोई मार्ग बताओ जिससे आश्रम में कुछ समय रुका जा सके। उसी समय दो ऋषिकुमार प्रवेश करते हैं और राजा दुष्यन्त से प्रार्थना करते हैं कि राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने के लिए वे कुछ समय आश्रम में रुक जायें। राजा ऋषिकुमारों का निवेदन स्वीकार करते हैं। उसी समय राजधानी से दूत का आगमन होता है और वह माता जी का सन्देश राजा को देता है। राजा अपनी जगह विदूषक को सेना सहित राजधानी भेज देते हैं। साथ ही विदूषक रानियों से "शकुन्तला के प्रति राजा की आसक्ति है" इस घटना को न बता दे, अतः राजा विदूषक से कहता है कि शकुन्तला से प्रेम की सब बातें केवल मनोविनोदार्थ हैं वास्तविक नहीं। इसी घटना के साथ द्वितीय अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक – नाटक के तृतीय अंक में महाकवि कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति आसक्त होने के कारण अस्वस्थ है। वह फूलों की शय्या पर लेटी है। उसी समय राजा भी आश्रम में प्रवेश करते हैं। वह पेड़ों की आड़ में छिपकर शकुन्तला और उसकी सखियों का वार्तालाप सुनते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों को बताती है कि वह राजा दुष्यन्त पर आसक्त है और उनसे विवाह के बिना जीवित न रह सकेगी। उसी समय राजा सामने आकर शकुन्तला के प्रति अपना प्रणय निवेदित करते हैं। राजा और शकुन्तला को एकान्त में छोड़कर दोनों सखियाँ बाहर निकल जाती हैं। राजा शकुन्तला के समक्ष गान्धर्व विधि से विवाह करने का प्रस्ताव रखता है। उसी समय शान्ति जल लेकर गौतमी कुटिया में प्रवेश करती है। राजा वृक्ष की आड़ में छिप जाता है। गौतमी शकुन्तला को लेकर चली जाती है तथा राजा भी यज्ञ में राक्षसों के विघ्न को दूर करने के लिए प्रस्थान करता है। इसी घटना के साथ तृतीय अंक की समाप्ति होती है।

चतुर्थ अंक – यह अंक इस नाटक का प्राण है। इस अंक में महाकवि कालिदास ने मानव एवं प्रकृति के मध्य पारस्परिक प्रेम और करुणा का सुन्दर निदर्शन किया है। शकुन्तला के साथ दुष्यन्त का गन्धर्व विवाह हो जाता है। वह शीघ्र ही शकुन्तला को ले जाने के लिए किसी योग्य व्यक्ति को भेजने का आश्वासन देकर तथा शकुन्तला को स्वनाम अंकित अँगूठी प्रदान करके अपनी राजधानी हस्तिनापुर चले जाते हैं। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न होकर कुटी में बैठी है। उसी समय अतिथि के रूप में दुर्वासा ऋषि आश्रम में प्रवेश करते हैं। पति के ध्यान में मग्न शकुन्तला ऋषि का आतिथ्य नहीं कर पाती है परिणामस्वरूप ऋषि क्रुद्ध होकर शकुन्तला को शाप देते हैं कि 'जिसका स्मरण करती हुई तू मुझ आये हुए तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही है वह याद दिलाने पर भी तुझको स्मरण नहीं करेगा।'' दुर्वासा के वचनों को सुनकर प्रियंवदा ऋषि को प्रसन्न करने का प्रयास करती है तब दुर्वासा ऋषि बताते हैं कि अभिज्ञान का आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जायेगा। इतना कहकर ऋषि दुर्वासा अन्तर्धान हो जाते हैं। प्रियंवदा और अनसूया यह निश्चय करती हैं कि शाप के इस वृत्तान्त को हम न तो शकुन्तला से कहेंगे और न ही किसी अन्य से। जाते समय राजा ने उसको स्वनाम अंकित अगूँठी पहनाई थी। वह अँगूठी शकुन्तला के पास है। अतः राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं होगा। यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त होता है।

ऋषि कण्व जब तीर्थयात्रा से लौटते हैं तब उन्हें अशरीरधारी तपोमयी वाणी द्वारा यह ज्ञात होता है कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हुआ है और वह गर्भिणी है। यह जानकर ऋषि कण्व इस विवाह का समर्थन करते हैं। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है और उसको हस्तिनापुर ले जाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता। शकुन्तला पूर्ण गर्भिणी है, अतः ऋषि उसे राजा के पास भेजने का सम्पूर्ण प्रबन्ध करते हैं। शकुन्तला की विदायी की तैयारी की जाती है। वन के वृक्षों ने शकुन्तला के लिए रेशमी वस्त्र, लाक्षारस तया आभूषण प्रदान किये हैं। सभी तपस्विनियाँ शकुन्तला को आशीर्वाद देती हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वन के वृक्षों और मृगों आदि से विदायी लेती है। शकुन्तला के वियोग में सभी दुःखी हैं। विदायी के अवसर पर ऋषि कण्व शकुन्तला को उसके करणीय कर्तव्यों की शिक्षा देते हैं और राजा दुष्यन्त के लिए सन्देश भी देते हैं। ऋषि कण्य शकुन्तला को विदा करते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों तथा वनज्योत्स्ना से भी विदा लेती है। शकुन्तला के

साथ गौतमी और दो तपस्वी हस्तिनापुर जाते हैं। शकुन्तला को पति घर भेजकर ऋषि कण्व सन्तोष का अनुभव करते हैं। इसी के साथ चर्तुथ अंक की समाप्ति होती है।

पंचम अंक – इस अंक में शकुन्तला को लेकर शाङ्र्गरव, शारद्वत और गौतमी राजद्वार में पहुंचते हैं। राजा दुष्यन्त के आदेशानुसार वे महल में प्रवेश करते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण राजा शकुन्तला से विवाह का समस्त वृत्तान्त भूल चुका है। पारस्परिक अभिनन्दन के पश्चात् शाङ्र्गरव राजा दुष्यन्त से निवेदन करता है कि आप दोनों के गान्धर्व विवाह को ऋषि कण्व ने स्वीकार किया है और शकुन्तला को आपके पास भेजा है। आप शकुन्तला को स्वीकार करें दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण राजा गान्धर्व विवाह के वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है और शकुन्तला से विवाह की घटना को असत्य बताता है। इस पर गौतमी शकुन्तला का घूँघट हटा देती है किन्तु राजा उसको नहीं पहचानता है। शकुन्तला राजा द्वारा दी गई अंगूठी दिखाकर उसको विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती है किन्तु वह अंगूठी रास्ते में शचीतीर्थ नदी की वन्दना करते समय उसके हाथ से गिर जाती है, अतः उसका यह प्रयास भी निरर्थक सिद्ध होता है। शाङ्र्गरव और राजा के मध्य आवेशपूर्ण वार्तालाप होता है किन्तु राजा शकुन्तला को स्वीकार करने से मना कर देता है। पुरोहित शकुन्तला को पुत्र जन्म तक अपने घर में रखने का प्रस्ताव देते हैं। शाङ्र्गरव, शारद्वत और गौतमी शकुन्तला को वहाँ छोड़कर चले जाते हैं। शकुन्तला स्वयं को कोसती है और रोती है। उसी समय एक अप्सरा (मेनका) आकर उसे उड़ा ले जाती है। यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। राजा खिन्न हृदय और चिन्तित है। इसी घटना के साथ पंचम अंक समाप्त होता है।

षष्ठ अंक – शचीतीर्थ की वन्दना के समय शकुन्तला के हाथ से जो अंगूठी नदी में गिर गई थी वह अंगूठी रोहू मछली के पेट से धीवर को मिलती है वह उस अंगूठी को बेचने के लिए बाजार जाता है। वहाँ बाजार में सिपाहियों ने उसे चोर समझकर पकड़ लिया और निर्णय के लिए राजा के पास ले गए। राजा धीवर को पुरस्कार देकर छोड़ देता है। राजा जब उस अंगूठी को देखता है तो दुर्वासा ऋषि के शाप का प्रभाव समाप्त हो जाता है और वह शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह की समस्त घटना का स्मरण करता है शकुन्तला के स्मरण से राजा अत्यन्त दुःखी रहने लगता है। राजा वसन्तोत्सव न मनाने की आज्ञा देता है। मेनका की सखी सानुमती अदृश्य रूप में राजा के पास आकर उसकी अवस्था को देखती है राजा अपने मित्र विदूषक से वार्तालाप करता है और शकुन्तला के अधूरे चित्र को मँगाकर पूरा करने का प्रबन्ध करता है। तभी प्रतिहारी मन्त्री का एक पत्र लेकर आती है कि धनमित्र नामक व्यापारी नौका के टूट जाने से समुद्र में मर गया। उसकी कोई सन्तान नहीं है, अतः उसका समस्त धन राजकोष में जाएगा। यह सुनकर राजा अत्यन्त दुःखी होता है कि सन्तानहीन होने के कारण उसका समस्त धन भी दूसरे लोगों के पास चला जाएगा। यह सोचकर राजा मूर्च्छित हो जाता है। उसी समय इन्द्र के सारथि मातालि का आगमन होता है। वह देवराज इन्द्र का सन्देश राजा दुष्यन्त को सुनाता है कि दैत्यों के नाश के लिए इन्द्र ने आपको तुरन्त बुलाया है। राजा इन्द्र के रथ पर चढ़कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक – राजा दुष्यन्त ने दानवों पर विजय प्राप्त की। इन्द्र ने दुष्यन्त का विशेष सत्कार किया और उन्हें विदा किया। स्वर्ग से लौटते समय राजा दुष्यन्त ने हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि के आश्रम को देखा। वह ऋषि को प्रणाम करने के लिए

रुक गए। राजा मारीच ऋषि से मिलने गए। आश्रम में राजा ने एक अद्भुत मेधावी बालक को देखा जो शेर के बच्चे के दाँत गिनने का प्रयत्न कर रहा था और उस शेर के बच्चे को खेल-खेल में तंग कर रहा था। बालक की शारीरिक आकृति राजा से मिलती-जुलती थी, अतः राजा उस बालक को पुत्रवत् स्नेह प्रदान करने लगता है। बालक भी राजा का कहना मानने लगता है। बालक के साथ उपस्थित तपस्विनी से राजा को यह ज्ञात होता है कि इस बालक की माता का नाम शकुन्तला है और यह बालक पुरुवंशी है। इसके पिता ने इसकी माता को छोड़ दिया है। अपराजिता नाम की औषधि की घटना से यह निश्चित हो जाता है कि वह बालक राजा का पुत्र है। उसी समय शकुन्तला राजा के समक्ष आती है और उसको प्रणाम करती है। राजा शकुन्तला के पैरों में गिरकर उसके प्रति किए गए अनुचित व्यवहार के लिए उससे क्षमा मँगता है। राजा और शकुन्तला मारीच ऋषि का दर्शन करने जाते हैं। वहाँ मारीच ऋषि बताते हैं कि दुर्वासा के शाप के कारण राजा ने शकुन्तला को नहीं पहचाना। अँगूठी देखते ही शाप की समाप्ति हो गई तथा उसे शकुन्तला की स्मृति हो गयी। ऋषि ने राजा को निर्दोष बताया तथा दोनों को आशीर्वाद देकर इन्द्र के रथ पर उन्हें उनकी राजधानी भेज दिया। वहाँ राजा और शकुन्तला सुखपूर्वक रहने लगे और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

12.3.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के घटनाक्रम का समय

महाकवि कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में छः वर्ष की घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। नाटक का प्रारम्भ ग्रीष्म ऋतु से होता है जैसा कि सूत्रधार के कथन से स्पष्ट है। प्रथम अंक में एक दिन की घटना का वर्णन किया गया है। द्वितीय अंक की घटना भी ग्रीष्म ऋतु की ही है और इसमें भी एक दिन की ही घटना का वर्णन है। अंक तीन की घटना अंक दो की घटना के 15 दिन के बाद की है क्योंकि अंक तीन में राजा और शकुन्तला दोनों ही पारस्परिक वियोग में अत्यन्त कृश हो गए हैं। इस अंक में भी एक दिन की घटना का ही वर्णन है। चतुर्थ अंक और तृतीय अंक की घटनाओं के बीच भी लगभग 45 दिन का अन्तराल है। इस अंक में भी सखियों के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हुआ था। इस अंक में भी एक दिन की घटना का वर्णन है। इस अंक के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि वर्षा ऋतु बीत चुकी है और शिशिर ऋतु का आगमन हो चुका है। चतुर्थ अंक और पंचम अंक की घटनाओं के बीच लगभग 3 या 4 दिन का अन्तराल है। इस अंक में शकुन्तला को आश्रम से हस्तिनापुर पहुंचने में लगभग 3 से 4 दिन का समय अवश्य लगा होगा। इस अंक की घटना दिन के तीसरे पहर से प्रारम्भ होती है और लगभग 2 घंटे में समाप्त हो जाती है। मेनका आकर राजा द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला को अपने साथ लेकर चली जाती है। छठें अंक में एक दिन की घटना का वर्णन है। पंचम और षष्ठ अंक की घटना के बीच लगभग 5-6 वर्ष का अन्तराल है क्योंकि दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र लगभग 6 वर्ष का हो चुका है। सप्तम अंक की घटना एक दिन की है। छठें और सप्तम अंक की घटना के मध्य लगभग 15 दिन का अन्तराल है क्योंकि इस बीच दुष्यन्त इन्द्रलोक जाते हैं वहाँ शत्रुओं का संहार कर स्वागत प्राप्ति और विदायी के पश्चात् मारीच ऋषि के आश्रम में जाते हैं जहाँ उनका शकुन्तला से पुनः मिलन होता है और इस प्रकार भरतवाक्य के साथ नाटक का सुखान्त अन्त होता है।

12.3.3 महाकवि कालिदास की नाट्यकला और शैली

प्रिय विद्यार्थियों! इकाई के इस अंश में आप महाकवि कालिदास की नाट्यकला और शैली का परिचय प्राप्त करेंगे। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार हैं उन्होंने 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' तीन नाटक लिखे जिनमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का विशेष महत्त्व है। यह नाटक कालिदास की नाटकीय प्रतिभा का परिचायक है। घटना संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं की सार्थकता, वर्णनों में स्वभाविकता, रचना कौशल, वर्णनों और घटनाओं की ध्वन्यात्मकता आदि विशेषतायें महाकवि कालिदास के नाटकों में परिलक्षित होती हैं।

1) **घटना संयोजन में सौष्ठव** – महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में घटनाओं के संयोजन में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने प्रत्येक घटना को इस प्रकार संयोजित किया है कि सभी घटनायें स्वाभाविक और सार्थक प्रतीत होती हैं। ये घटनायें नाटक के कथानक को स्वाभाविक रूप से आगे बढाती हैं– जैसे चतुर्थ अंक में पति के ध्यान में मग्न शकुन्तला द्वारा दुर्वासा ऋषि का आतिथ्य न कर पाना, दुर्वासा का शकुन्तला को शाप देना, पहचान का आभूषण दिखाने से शाप से निवृत्ति, कण्व ऋषि को शकुन्तला के गान्धर्व विवाह की सूचना प्राप्त होना, शकुन्तला को पतिगृह भेजने की तैयारी करना आदि सभी घटनायें नाटक के कथानक को आगे बढाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।

2) **घटनाओं की सार्थकता** - महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में जिन घटनाओं का वर्णन किया है उनका एक विशिष्ट उद्देश्य और सार्थकता है। प्रत्येक घटना पाठक को एक निश्चित उद्देश्य से परिचित कराती है– जैसे नाटक के प्रथम अंक में तपस्वियों द्वारा राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद सप्तम अंक में फलीभूत होता है और राजा को चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार चतुर्थ अंक में दुर्वासा ऋषि के शापवश राजा का शकुन्तला को भूल जाना, अभिज्ञान का आभूषण अँगूठी के खो जाने से पंचम अंक में राजा द्वारा शकुन्तला को याद न किया जाना, षष्ठ अंक में अँगूठी की प्राप्ति के पश्चात् राजा का शकुन्तला के वियोग में दुःखी होना तथा सप्तम अंक में मारीच ऋषि के आश्रम में राजा का शकुन्तला और अपने पुत्र से पुनः मिलन की घटनायें नाटक को एकसूत्र में बाँधने और पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

3) **वर्णनों में स्वाभाविकता** – महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में अपनी मौलिक प्रतिभा से नाटकीय वर्णनों को जीवन्तता प्रदान की है। उनके नाटक में पशु-पक्षी और वन भी नाटक के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करते हैं। उनके वर्णन इतने स्वाभाविक और सहज हैं कि उनमें कृत्रिमता का लेशमात्र भी नहीं झलकता है। नाटक के प्रथम अंक में चाहे मृग के दौड़ने का वर्णन हो, रथ के वेग का वर्णन हो, सखियों के पारस्परिक वार्तालाप का वर्णन हो, मृगया के गुणों का वर्णन हो प्रत्येक वर्णन में एक प्रकार की स्वाभाविकता परिलक्षित होती है। नाटक के चतुर्थ अंक की ओर यदि दृष्टिपात् करें तो शकुन्तला की स्थिति, सखियों का शकुन्तला के प्रति प्रेम, वन-वृक्षों एवं पशुओं का शकुन्तला के प्रति प्रेम और शकुन्तला का भी उन वन्य वृक्षों और पशुओं के साथ सहोदरों जैसा प्रेम, कण्व और शकुन्तला का पारस्परिक प्रेम और विदायी के अवसर पर शकुन्तला का पिता और सखियों से प्रेम, वियोग आदि वर्णनों में कहीं

भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। सभी वर्णन इतने स्वाभाविक हैं कि सहज ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

4) **रचना कौशल** – महाकवि कालिदास ने महाभारत के आदिपर्व तथा पद्म पुराण से कथानक ग्रहण कर अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की रचना की है। यदि हम आदिपर्व और पद्म पुराण की ओर दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि वहाँ यह कथा अत्यन्त संक्षेप में प्राप्त होती है। वास्तव में शकुन्तला और दुष्यन्त की इस कथा को महाकवि ने अपने नाटक में जीवन्तता प्रदान की है। उन्होंने अपनी कल्पनाशक्ति, रचनात्मकता और वर्णन कुशलता से इस नीरस और अति संक्षिप्त कथा को संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटक के रूप में स्थान दिलाया। उन्होंने मूलकथा में कुछ परिवर्तन करके अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की रचना की।

5) **वर्णनों और घटनाओं की ध्वन्यात्मकता** – महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में ध्वन्यात्मकता और व्यंजना शक्ति को विशेष स्थान दिया है। उनकी रचनाओं में ध्वन्यात्मकता और व्यंग्य का दर्शन हमें पग-पग पर मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में भी महाकवि ने संकेतों के माध्यम से विशिष्ट दृश्यों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। उनका प्रत्येक वर्णन सार्थक है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार के कथन 'दिवसाः परिणामरमणीयाः'' से यह सूचना मिलती है कि नाटक सुखान्त होगा, नटी के ''ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः....'' इस कथन के द्वारा राजा शकुन्तला से प्रेम करेगा, यह संकेत स्पष्ट होता है। इस नाटक की महत्त्वपूर्ण घटना 'भूलना' है जिसका संकेत नाटक के प्रथम अंक में सूत्रधार के द्वारा तथा चतुर्थ एवं पंचम अंक में दुर्वासा के शापवश राजा का शकुन्तला को भूल जाना, शकुन्तला द्वारा भूल से अगूँठी का खो जाना आदि घटनायें नाटक की ध्वन्यात्मकता को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं।

6) **चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता** – कालिदास ने अपनी रचनाओं में पात्रों के चरित्र-चित्रण में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी रचनाओं में प्रत्येक पात्र का विशिष्ट व्यक्तित्व और विशिष्ट स्थान है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का प्रत्येक पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। उनके पात्र सामाजिक, चारित्रिक और सांस्कृतिक गुणों से युक्त हैं। उनमें कहीं भी शीलभंग के दर्शन नहीं होते हैं। राजा दुष्यन्त इस नाटक के नायक हैं। वे अपने कर्तव्यपालन के प्रति सदैव सजग और तत्पर रहते हैं। दुर्वासा के शापवश वह शकुन्तला को नहीं पहचान पाते हैं किन्तु अगूँठी का दर्शन होने के पश्चात् वह पश्चाताप में डूब जाते हैं और मारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और अपने पुत्र से पुनः मिलन होने पर उन्हें सहर्ष स्वीकार करते हैं। नाटक की नायिका शकुन्तला भी अत्यन्त विनम्र, लज्जाशील, मितभाषी और सरल हृदय की है। नाटक के चतुर्थ अंक में गान्धर्व विवाह की सूचना प्राप्त होने पर जब कण्व शकुन्तला के पास जाते हैं तो शकुन्तला नितान्त लज्जा का अनुभव करती हुई अपनी सहजता को अभिव्यक्त करती है। वह अपनी सखियों के साथ सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करती है। कण्व, गौतमी, दुर्वासा, मारीच, अनसूया, प्रियंवदा आदि सभी पात्रों के व्यक्तित्व को महाकवि ने इस नाटक में बड़ी कुशलता के साथ वर्णित किया है।

7) **पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग** – महाकवि कालिदास ने पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है। जो पात्र जिस कोटि के हैं उन पात्रों के लिए उसी कोटि की भाषा का प्रयोग किया गया है। प्रियंवदा और अनसूया शकुन्तला के साथ सखीजनोचित हास्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग करती हैं। कण्व ऋषि ऋषिजनोचित भाषा का प्रयोग कर शकुन्तला का अभिनन्दन करते हैं। पुरोहित दार्शनिक भाषा का प्रयोग करते हैं। विदूषक सदैव भोजन से सम्बन्धित बातें करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग परिलक्षित होता है।

8) **प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण** – महाकवि की रचनाओं में प्रसाद और माधुर्य गुणों की प्रधानता है। उन्होंने ओज गुण का भी प्रयोग किया है किन्तु ऐसे स्थल सीमित हैं। उनके सभी पद्यों में प्रसाद गुण कम या अधिक मात्रा में विद्यमान हैं फिर भी कुछ श्लोक ऐसे हैं जो प्रसाद गुण के कारण पाठकों के हृदय को सहज ही प्रभावित करते हैं, जैसे –

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।
(अभि. 5/12)

कालिदास की रचनाओं में माधुर्य गुण का प्राचुर्य है। उन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में शकुन्तला के सौष्ठव के वर्णन में उदारता का परिचय दिया है। वह शकुन्तला जैसी कोमलांगी के द्वारा वृक्ष सेचन और तपस्या जैसे कठोर कार्यों को सहन नहीं कर पाते –

इदं किलव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।
(अभि. 1/18)

9) **भाषा सरल, सरस और मनोहर** – महाकवि ने अपनी रचनाओं में सरल, सरस और मनोहर भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने दीर्घ समासों का सर्वथा परित्याग किया है। उन्होंने पाण्डित्य प्रदर्शन का भी परित्याग किया है, अतः उनकी रचनाओं में क्लिष्ट कल्पना और क्लिष्ट प्रयोगों का नितान्त अभाव है।

10) **रसों का प्रयोग** – अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का प्रधान रस शृंगार है। महाकवि ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को अपने नाटक में स्थान दिया है। नाटक के प्रथम तीन अंकों में जहाँ संयोग शृंगार के दर्शन होते हैं वहीं पंचम और षष्ठ अंक में वियोग शृंगार की चरमावस्था देखते ही बनती है। शृंगार रस के अतिरिक्त करुण, वीर, अद्‌भुत, हास्य, वात्सल्य आदि रसों के प्रयोग भी यत्र-तत्र महाकवि ने किए हैं।

11) **अलंकारों का प्रयोग** – महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में प्रायः सभी प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं में अलंकार सहज और स्वाभाविक हैं न कि श्रमसाध्य। उन्होंने मुख्य रूप से उपमा, यमक, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, दीपक, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। महाकवि का प्रिय अलंकार उपमा

है। उनकी उपमायें इतनी सहज, स्वाभाविक और मनोरम हैं कि सहज ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। उनकी उपमा का एक उदाहरण देखिए–

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।

(अभि. 1/21)

बोध प्रश्न 1

1) नीचे दिए कथनों में से सत्य (✓) तथा असत्य (×) कथन का चयन कीजिए –

i) महाकवि कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई.पू. माना जाता है– ( )

ii) जर्मन विद्वान् गेटे ने विक्रमोर्वशीयम् नाटक की प्रशंसा की है– ( )

iii) मालविकाग्निमित्रम् नाटक में सात अंक हैं– ( )

iv) शकुन्तला कण्व ऋषि की पालिता पुत्री है– ( )

v) दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न करने के लिये अनसूया जाती है– ( )

vi) मारीच ऋषि का आश्रम हिमालय पर्वत पर था– ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i) महाकवि कालिदास का विवाह ———— से हुआ था।

ii) मेघदूतम् ———— है।

iii) विक्रमोर्वशीयम् ———— नामक रूपक है।

iv) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के नान्दी पाठ में ———— की स्तुति है।

v) दुष्यन्त और शकुन्तला का ———— विवाह हुआ था।

vi) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का प्रधान रस ———— है।

vii) महाकवि कालिदास का प्रिय अलंकार ———— है।

अभ्यास प्रश्न 1

1) महाकवि कालिदास का परिचय लिखिए।

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक की कथावस्तु लिखिए।

3) महाकवि कालिदास की नाट्यकला एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

12.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

प्रिय विद्यार्थियों! इकाई के इस अंश में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रमुख पात्रों यथा दुष्यन्त, शकुन्तला, कण्व, प्रियंवदा आदि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित होंगे।

12.4.1 दुष्यन्त का चरित्र-चित्रण

राजा दुष्यन्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के नायक हैं। वह धीरोदात्त कोटि के नायक हैं। वह पुरुवंशी राजा हैं। उनके चरित्र की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं–

i) **शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम** – शारीरिक सौष्ठव की दृष्टि से राजा दुष्यन्त अत्यन्त सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हैं। उनकी आयु लगभग 30-35 वर्ष है। उनके शारीरिक सौन्दर्य से सभी प्रभावित हो जाते हैं। उनके सौन्दर्य को देखकर प्रियंवदा कहती है – **''को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते।''**

वह नितान्त परिश्रमी और मृगया प्रेमी हैं। वह धनुष की टंकार मात्र से ही यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों को भगा देते हैं। उनका पराक्रम इतना अधिक है कि स्वयं इन्द्र भी दानवों का वध करने के लिए उन्हें स्वर्ग बुलाते हैं।

ii) **मृदुभाषी एवं स्नेही** – राजा दुष्यन्त मधुर वाणी बोलने वाले राजा हैं। प्रियंवदा उनकी मधुर वाणी की प्रशंसा करती है। उनके विचार उच्चकोटि के और सन्तुलित हैं। वह जब तक यह निश्चय नहीं कर लेते कि शकुन्तला क्षत्रिय कन्या है तब तक वह उससे विवाह का विचार अपने मन में नहीं लाते हैं। वह एक उच्चकोटि के प्रेमी और उत्तम पति हैं। नाटक के तृतीय अंक में शकुन्तला की अवस्था देखकर वह उससे पाणिग्रहण और रक्षा की स्वीकृति देता है तथा कृशकाय शकुन्तला की सेवा शुश्रूषा भी करता है।

iii) सहृदय और संयमी – राजा दुष्यन्त सहृदय और संयमी है। षष्ठ अंक में धनमित्र नामक व्यापारी की मृत्यु पर वह शोक प्रकट करते हैं। उनको सन्तानहीनता का बहुत दुःख है। वह धन के लोभी नहीं हैं। प्रजा की रक्षा को ही वह अपना मुख्य धर्म समझते हैं। वह सदैव दुःखियों के दुःख को दूर करने के लिए तत्पर रहते हैं। वह शाप के प्रभाव के परिणामस्वरूप शकुन्तला को नहीं पहचान पाते हैं। वह परस्त्री की ओर देखना पाप समझते हैं – **''अनिवर्णनीयं परकलत्रम्।''**

iv) उत्तम शासक – दुष्यन्त उच्चकोटि के शासक हैं। उनमें एक सफल शासक के सभी गुण विद्यमान हैं। वह कर्तव्यपरायण, सहृदयी, संयमी, निर्भीक, पराक्रमी और विनीत हैं। वह आश्रम में उपस्थित विघ्नों को दूर करके अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय देते हैं। वह इन्द्र की सहायता करके अपने पराक्रम को प्रकट करते हैं। शाप का प्रभाव समाप्त होने के पश्चात् वह अत्यन्त दुःखित होते हैं और अपनी सहृदयता का परिचय देते हैं।

v) अन्य गुण – राजा दुष्यन्त मातृभक्त और आज्ञाकारी पुत्र हैं। नाटक के द्वितीय अंक में माता की आज्ञा प्राप्ति के पश्चात् स्वयं ऋषिकार्य में व्यस्त होने के कारण वह अपने स्थान पर शीघ्र ही विदूषक को भेजता है। वह कला प्रेमी है। नाटक के पंचम अंक में रानी हसंपदिका के संगीत को सुनकर वह मन्त्रमुग्ध हो जाता है। वह कुशल चित्रकार भी है। षष्ठ अंक में हमें उसकी चित्रकला में प्रवीणता के दर्शन होते हैं जब वह शकुन्तला के अपूर्ण चित्र को पूर्ण करते हैं।

राजा दुष्यन्त ऋषियों के प्रति विशेष आदरभाव रखते हैं। यही कारण है कि प्रथम अंक में तपस्वी के कहने पर वह मृग पर बाण नहीं चलाते। वह अत्यन्त शिष्ट वेष में आश्रम में प्रवेश करते हैं।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नाटक के नायक दुष्यन्त के उदात्त चरित्र को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

12.4.2 शकुन्तला का चरित्र-चित्रण

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में शकुन्तला को एक आदर्श स्त्री के रूप में चित्रित किया है। शकुन्तला इस नाटक की नायिका है। वह ऋषि विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है। मेनका को इन्द्र ने विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए भेजा था। मेनका ने उनका तप भंग किया और दोनों के सम्पर्क से शकुन्तला का जन्म हुआ। दोनों ने उसको छोड़ दिया। शकुन्तों नामक पक्षियों ने कुछ समय तक उसका पालन-पोषण किया, अतः उसका नाम शकुन्तला पड़ा। तत्पश्चात् ऋषि कण्व ने उसका पालन पोषण किया, इस प्रकार वे उसके धर्मपिता हुए। शकुन्तला के चरित्र की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं–

i) शारीरिक सौष्ठव – शकुन्तला लगभग 18 वर्ष की कन्या है। वह अत्यन्त सुन्दर है। उसका सौन्दर्य नैसर्गिक है। वह गौरवर्णी है। उसमें युवावस्था के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। उसके अंगों में असाधारण लावण्य है। उसके सौन्दर्य को देखकर राजा भी मन्त्रमुग्ध हो जाता है –

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।1/21।।

ii) सुशील और लज्जाशील – वह अत्यन्त सुशील और लज्जाशील है। राजा को देखते ही उसके मन में कामभावना जागृत हो जाती है, किन्तु वह उसको प्रकट नहीं करती – **"किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।"**

नाटक के तृतीय अंक में जब कामपीड़ित होने के कारण वह अस्वस्थ हो जाती है तब अपनी सखियों को भी इसका कारण बताने में संकोच का अनुभव करती है। प्रथम अंक में जब राजा उसकी प्रशंसा करता है तब वह लज्जावश शिर नीचे कर लेती है। वह अत्यन्त मृदुभाषी है। उसकी मृदुभाषिता की झलक अनसूया और प्रियंवदा के साथ उसके वार्तालाप में देखने को मिलती है।

iii) प्रकृति प्रेमी – वह प्रकृति से नितान्त प्रेम करती है। वह वृक्षों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों के प्रति सहोदरों जैसा प्रेम प्रकट करती है। वह कोमलांगी होते हुए भी स्वयं ही आश्रम के वृक्षों को जल से सींचती है। श्रृंगार प्रेमी होने पर भी वह वृक्षों के कोमल पत्तों को नहीं तोड़ती है –

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।। 4/9।।

iv) पतिव्रता नारी – वह पतिव्रता नारी है। विवाह के पश्चात् वह पति चिन्तन में इस तरह मग्न हो जाती है कि अतिथि रूप में आये दुर्वासा ऋषि का आतिथ्य सत्कार नहीं कर पाती परिणामस्वरूप उसको उनके पाप का भाजन बनना पड़ता है। पंचम अंक में राजा दुष्यन्त जब उसका परित्याग करते हैं उस समय भी वह राजा को भला बुरा नहीं कहती है। वह मारीच ऋषि के आश्रम में रहती है। वह स्वयं को ही दोषी मानती है राजा को नहीं। जब राजा से उसका मिलन होता है तो वह स्वयं को भाग्यशाली समझती है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में शकुन्तला के आदर्श, विनम्र और सरल चरित्र को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

12.4.3 कण्व का चरित्र-चित्रण

कण्व ऋषि आश्रम के अधिष्ठाता हैं। उनका दूसरा नाम काश्यप है। ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी और श्रौत्र विधि से अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण हैं। ये अपने तप के प्रभाव से भूत, वर्तमान और भविष्य को जानने वाले हैं। उनके तप के प्रभाव के कारण राक्षस उनके यज्ञ में विघ्न नहीं डालते हैं। शकुन्तला के कल्याणार्थ वह सोमतीर्थ जाते हैं। शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हुआ है और वह गर्भिणी है, इसकी सूचना उनको आकाशवाणी के द्वारा प्राप्त होती है। शकुन्तला की विदायी के अवसर पर कण्व ऋषि के तपोबल के परिणामस्वरूप ही वृक्ष आभूषण, लाक्षारस और रेशमी वस्त्र आदि प्रदान करते हैं।

शकुन्तला कण्व ऋषि की धर्मपुत्री है। परित्यक्ता शकुन्तला का उन्होंने अपनी पुत्री के तुल्य पालन-पोषण किया है। शकुन्तला के प्रति उनका प्रेम निःस्वार्थ है। शकुन्तला के प्रति उनका प्रेम उसकी विदायी के अवसर पर देखने को मिलता है जहाँ वे गृहस्थ के समान व्याकुल होते हैं –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।। 4/6।।

शकुन्तला की विदायी के पश्चात् वे अत्यन्त खिन्न हो जाते हैं। शकुन्तला के प्रति उनका प्रेम निःस्वार्थ और आदर्श भाव को व्यक्त करता है। महर्षि कण्व यद्यपि ऋषि हैं फिर भी उन्हें लौकिक लोकाचार का भली-भाँति ज्ञान है। उनके लौकिक व्यवहार का ज्ञान हमें उस समय होता है जब वह पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को उपदेश देते हैं–

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने .....।।4/18।।

ऋषि कण्व अनसूया और प्रियंवदा को शकुन्तला के साथ नहीं भेजते हैं क्योंकि उन्हें उनका भी विवाह करना है।

मानव स्वभाव का भी उनको भली-भाँति ज्ञान है। उन्हें यह ज्ञात है कि अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाने पर व्यक्ति अपने दुःख को भूल जाता है। अतः वे शकुन्तला से कहते हैं कि राजा के यहाँ पहुँचने पर राजकार्य में व्यस्त होने के परिणामस्वरूप तुम इस दुःख को भूल जाओगी। महर्षि कण्व कन्या को धरोहर के समान समझते हैं। वह शकुन्तला को पतिगृह भेजकर आनन्दमिश्रित सन्तोष का अनुभव करते हैं –

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यीर्पतन्यास इवान्तरात्मा।।4/22।।

12.4.4 अनसूया और प्रियंवदा का चरित्र-चित्रण

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम नाटक में अनसूया और प्रियंवदा को शकुन्तला की सखियों के रूप में वर्णित किया है। शकुन्तला की सखियाँ भी उसके तुल्य सुन्दर और समान आयु वाली हैं। तीनों सखियों में अनसूया ज्येष्ठ प्रतीत होती है। तीनों में घनिष्ठ प्रेम है और वे सदैव एक-दूसरे को सुखी देखना चाहती हैं।

नाटक में अनसूया और प्रियंवदा दोनों सखियाँ सदैव साथ-साथ रहती हैं इसलिए इनके चरित्र में अनेक समानताओं और विषमताओं के दर्शन होते हैं। अगर हम इन दोनों की चारित्रिक समानताओं की ओर दृष्टिपात् करें तो हम देखेंगे कि दोनों ही शकुन्तला से निःस्वार्थ भाव से प्रेम करती हैं। तृतीय अंक में शकुन्तला की अवस्था का कारण जानकर दोनों सखियाँ उसको राजा से मिलाने का प्रयत्न करती हैं। शकुन्तला सुखी रहे, अतः दोनों सखियाँ दुर्वासा ऋषि के शाप की बात शकुन्तला से छिपा लेती हैं। दोनों ही अत्यन्त शिष्ट, विनीत और मृदुभाषी हैं। वे राजा से बड़ी शिष्टता से मिलती हैं। दोनों सखियाँ कार्य कुशल और बुद्धिमान हैं। आश्रम में वृक्षों के सेंचन का कार्य दोनों बड़े उत्साह के साथ करती हैं। शकुन्तला की विदायी के अवसर पर दोनों अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए उसको वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत करती हैं।

उपरोक्त चारित्रिक समानताओं के साथ दोनों के चरित्र में कुछ भिन्नतायें भी दिखाई देती हैं, जैसे ज्येष्ठ होने के परिणामस्वरूप अनसूया गम्भीर प्रकृति की है। उसमें प्रौढता के दर्शन होते हैं। राजा जब आश्रम में प्रवेश करते हैं तो वह आगे बढकर उनसे वार्तालाप करती है। वह ही राजा को विश्वामित्र और मेनका से शकुन्तला के जन्म के विषय में बताती है। प्रियंवदा विनोद पसन्द करती है। वह अनसूया की अपेक्षा कम प्रौढ है। वह शकुन्तला से विवाह विषयक बातें करती है, जब शकुन्तला क्रुद्ध होकर जाने लगती है तो प्रियंवदा उसे रोकती है। वह मृदुभाषी है। मधुर बोलने के कारण ही उसका नाम प्रियंवदा पड़ा। अनसूया विचारशील और कम बोलने वाली है। वह हास-परिहास की बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं देती। वह किसी बात पर शीघ्र निर्णय नहीं लेती है। इसके विपरीत प्रियंवदा बोलने में चतुर है और अधिक बोलती है। अनसूया सशंकित वृत्ति की है। वह सहसा किसी बात पर विश्वास नहीं करती है। वह राजा से कहती है कि हमारी सखी को कोई दुःख न मिले आप उसके साथ ऐसा व्यवहार कीजियेगा। चतुर्थ अंक में जब अनसूया प्रियंवदा से यह कहती है कि वह राजा उसे स्मरण करेगा या नहीं इस पर प्रियंवदा तुरन्त विश्वास करके कहती है कि निश्चिन्त रहो वैसी आकृति वाले गुणों से युक्त होते हैं अतः वह राजा शकुन्तला को अवश्य स्मरण करेगा। अनसूया शकुन्तला के भविष्य के सुखों के प्रति विशेष चिन्तित दिखाई देती है जबकि प्रियंवदा शकुन्तला और राजा के विवाह विषयक वर्तमान सुख से ही सन्तुष्ट है। अनसूया गम्भीर और परिपक्व बुद्धि की है। प्रियंवदा शीघ्र घबड़ा जाती है। दुर्वासा ऋषि को मनाने के लिए वह गम्भीरतापूर्वक प्रियंवदा को भेजती है। अनसूया अधिक व्यावहारिक है। प्रियंवदा अधिक भावुक है। प्रियंवदा भयभीत है कि

ऋषि कण्व शकुन्तला के विवाह के विषय में जानकर क्या कहेंगे? तब अनसूया कहती है कि ऋषि इसका समर्थन करेंगे क्योंकि गुणवान् व्यक्ति को कन्या देनी है यह माता-पिता का प्रथम संकल्प होता है और यदि उसको भाग्य ही पूर्ण कर दे तो गुरुजन बिना प्रयत्न के ही कृतार्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अनसूया और प्रियंवदा को शकुन्तला की अनन्य सखियों के रूप में चित्रित किया है जो सदैव उनके हित के लिए तत्पर रहती हैं।

बोध प्रश्न 2

1) दुष्यन्त किस वंश के राजा हैं?

.....

.....

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का नायक किस कोटि का है?

.....

.....

3) विश्वामित्र और मेनका की पुत्री कौन है?

.....

.....

4) शृंगार प्रेमी होने पर भी कौन वृक्षों के पत्तों को नहीं तोड़ती है?

.....

.....

5) कण्व ऋषि का अपर नाम क्या है?

.....

.....

6) शकुन्तला के कल्याणार्थ ऋषि कण्व कहाँ जाते हैं?

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 2

1) दुष्यन्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।

2) शकुन्तला की चारित्रिक विशेषतायें लिखिए।

3) कण्व ऋषि के चरित्र की पाँच विशेषतायें लिखिए।

12.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! आप जानते हैं कि आपके पाठ्यक्रम की यह इकाई अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक से सम्बन्धित है। आप जानते हैं कि महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी रचनायें भारतीय समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। उनके द्वारा प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक भारतीय विद्वानों के साथ-साथ

विदेशी विद्वानों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस नाटक में सात अंक हैं। श्रृंगार रस प्रधान इस नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय कथा का वर्णन है। दुष्यन्त हस्तिनापुर के राजा हैं और शकुन्तला विश्वामित्र तथा मेनका की पुत्री तथा कण्व की धर्मपुत्री है। दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह होता है। विवाह के पश्चात् शकुन्तला पति के ध्यान में लीन रहती है परिणामस्वरूप वह दुर्वासा ऋषि का आतिथ्य नहीं कर पाती और उनके कोप का भाजन बन जाती है। प्रियंवदा जाकर ऋषि को प्रसन्न करती है तब वह कहते हैं कि अभिज्ञान का आभूषण दिखाने से शाप की समाप्ति हो जायेगी किन्तु वह अभिज्ञान का आभूषण अँगूठी शचीतीर्थ की वन्दना के समय शकुन्तला के हाथ से गिर जाती है, अतः दुष्यन्त शकुन्तला को नहीं पहचान पाते। मेनका आकर उसको अपने साथ ले जाती है। अँगूठी मिलने पर राजा अत्यन्त दुःखी होते हैं। राजा और शकुन्तला का मारीच ऋषि के आश्रम में पुनः मिलन होता है। इस प्रकार नाटक का सुखद अन्त होता है। महाकवि कालिदास घटनाओं की सार्थकता, उनके वर्णन, पात्रों के चरित्र-चित्रण, रचना कौशल, रस, अलंकार आदि के सम्बन्ध में अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय देते हैं। उनके वर्णन सरल, सहज और स्वाभाविक होने के कारण पाठकों को सहज ही आकर्षित करते हैं। पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं की ओर यदि दृष्टिपात् करें तो प्रत्येक पात्र अपनी भूमिका के अनुरूप ही अपने स्वभाव को अभिव्यक्त करता है। जहाँ दुष्यन्त राजोचित गुणों से युक्त धीर-गम्भीर मुद्रा में दिखायी देते हैं तो वहीं शकुन्तला भी स्त्रियोचित गुणों यथा लज्जा, मृदुभाषिता, सहजता जैसे गुणों से युक्त है। इस प्रकार महाकवि कालिदास पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्णतः सफल हुए हैं।

12.6 शब्दावली

षडयन्त्र – साजिश
उपासना – आराधना
आड़ – ओट, परदा
आतिथ्य – अतिथि सत्कार
संयोजन – सम्मिलित करना
मितभाषी – कम बोलने वाला
श्रमसाध्य – परिश्रम से होने वाला
प्रवीण – निपुण
लावण्य – सुन्दर

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली।

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3) संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा साहित्य एकेडमी, वाराणसी।

4) संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास,बलदेव उपाध्याय,शारदा मन्दिर, वाराणसी।

12.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) सत्य (ii) असत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) असत्य (vi) असत्य

2) (i) विद्योत्तमा (ii) खण्डकाव्य (iii) त्रोटक (iv) शिव (v) गान्धर्व (vi) शृंगार (vii) उपमा

बोध प्रश्न 2

1) दुष्यन्त पुरुवंश के राजा हैं।
2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का नायक धीरोदात्त कोटि का है।
3) विश्वामित्र और मेनका की पुत्री शकुन्तला है।
4) शृंगार प्रेमी होने पर भी शकुन्तला वृक्षों के पत्तों को नहीं तोड़ती है।
5) कण्व ऋषि का अपर नाम काश्यप है।
6) शकुन्तला के कल्याणार्थ ऋषि कण्व सोमतीर्थ जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 13 अभिज्ञानशाकुन्तलम् : चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 चतुर्थ अंक की कथा

13.3 प्रकृति का मानवीकरण

13.4 कालिदास की रचनाओं में ध्वन्यात्मकता

13.5 काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला

13.6 उपमा कालिदासस्य

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.10 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक की कथावस्तु से परिचित होंगे।
- नाटक में विष्कम्भक-योजना के महत्त्व एवं ज्ञान से परिचित होंगे।
- प्रकृति का मानवीकरण विषय को उदाहरण के साथ जानेंगे।
- काव्य में ध्वनि के भेदों से परिचित होंगे।
- महाकवि कालिदास के काव्यों में ध्वन्यात्मकता का परिचय प्राप्त करेंगे।

13.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक लौकिक संस्कृत वाङ्मय में अपनी अपरिमित विशेषताओं से अनुपम स्थान रखता है। इस पाठ के माध्यम से आप 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक से परिचित होंगे। इसके पूर्व वाले अंक अर्थात् तृतीय अंक में राजा दुष्यन्त कण्वशिष्यों की आज्ञा से राक्षसों से तपोवन में प्रवर्तमान यज्ञ की रक्षा करने का दायित्व स्वीकार करते हैं। वैसे शकुन्तला के प्रेमपाश में बँधे राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में कुछ दिन रहने हेतु सोच भी रहे थे कि तभी महर्षि कण्व की अनुपस्थिति से यज्ञ में बढ़ते हुए राक्षसों के उपद्रवों को देखकर कण्व-शिष्य यज्ञ की रक्षा करने के लिए दुष्यन्त से कुछ दिन आश्रम में निवास हेतु प्रार्थना करते हैं जिसे दुष्यन्त अविलम्ब स्वीकार करते हैं। कण्वशिष्यों की वह प्रार्थना दुष्यन्त के अभीष्ट की सिद्धि के लिए होती है। शिष्यों के आज्ञानुसार दुष्यन्त के आश्रम में प्रवेश करने से ही राक्षसों का विघ्न दूर होने लगता है। आश्रम में निवास करने के कारण दुष्यन्त को शकुन्तला के पास रहने और प्रेम बढ़ाने का अवसर मिलता है। गत

तृतीय अंक में मालिनी नदी के तीर पर स्थित लतामण्डप में शकुन्तला और दुष्यन्त की विविध शृंगारात्मक चेष्टाओं का मनोहर वर्णन देखने को मिलता है। इसी अंक में जब अनसूया ने राजा दुष्यन्त से शकुन्तला का सर्वतोभावेन ध्यान रखने के लिए कहा तो दुष्यन्त कहता है कि–

मेरे रनिवास में स्त्रियों की कमी नहीं, प्रिय भार्यायें भी बहुत हैं, तो भी मेरे कुल की प्रतिष्ठा दो कारणों से ही होगी, पहली समुद्रपर्यन्त फैली हुई पृथिवी पर शासन करने से और दूसरी तुम दोनों की प्रिय सखी शकुन्तला से।

दोनों सखियाँ दुष्यन्त की उक्त प्रतिज्ञा को सुनकर हर प्रकार से निश्चिन्त हो जाती हैं। इसके बाद दोनों सखियाँ राजा दुष्यन्त और शकुन्तला को प्रेमालाप करने का अवसर देने के लिए बहाना बनाकर लतामण्डप से बाहर चली जाती हैं। जब राजा दुष्यन्त लतामण्डप में होता है तभी मुनियों की राक्षसों के द्वारा यज्ञ में उत्पात मचाने की ध्वनि सुनाई देती है जिसे सुनकर राजा दुष्यन्त तपोवन की रक्षा हेतु आश्रम में प्रवेश करते हैं। इसी वर्णन के साथ तृतीय अंक समाप्त होता है। अब आपको इसके आगे की कथावस्तु का ज्ञान इस इकाई के माध्यम से होगा।

13.2 चतुर्थ अंक की कथा

महाकवि कालिदास की प्रसिद्धि में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का विशेष योगदान है। कथावस्तु की रोचकता एवं मार्मिकता की दृष्टि से 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का चतुर्थ अंक उल्लेखनीय है। इस अंक का प्रारम्भ नाटक की विष्कम्भक योजना से अनसूया और प्रियंवदा के पुष्प तोड़ने के दृश्य से होता है। नाटक में जो दृश्य नहीं दिखाया जा सकता तथा भविष्य में होने वाली घटना के प्रति पूर्व में जो संकेत किया जाता है उसे विष्कम्भक योजना के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

अंक के प्रारम्भ में विष्कम्भक योजना द्वारा पुष्प तोड़ती हुई अनसूया और प्रियंवदा के वार्तालाप से गान्धर्व विधि से शकुन्तला और दुष्यन्त के विवाह की सूचना मिलती है। दोनों सखियों के वार्तालाप के क्रम में यह भी ज्ञात होता है कि राजा दुष्यन्त, शकुन्तला को मुद्रिका देकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट गया है। राजा दुष्यन्त के राजधानी पहुँच जाने के बाद दोनों सखियाँ आशंका करती हैं कि– राजधानी पहुँचकर कहीं राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल न जाए। इतने में ही उन्हें आश्रम में आए हुए किसी ऋषि (दुर्वासा) का कर्कश स्वर सुनाई देता है। सखियाँ आश्रम में ऋषि का आगमन जानकर शीघ्रतापूर्वक उसके सत्कारार्थ पहुँचना चाहती हैं। यद्यपि आश्रम में शकुन्तला भी विद्यमान है किन्तु सखियाँ जानती हैं कि शकुन्तला तो दुष्यन्त के स्मरण में ही लीन है, उसका आस-पास हो रही किसी घटना पर ध्यान नहीं रहता। अतः वे पुष्पों का चयन छोड़कर आश्रम चली जाती हैं। जैसे ही आश्रम की सीमा में प्रवेश करती हैं वैसे ही उन दोनों ने तीक्ष्ण स्वर में दुर्वासा को शकुन्तला को शाप देते हुए सुना –

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।1/4।।

जब सखियों ने शकुन्तला को शाप देकर आश्रम से बाहर आते दुर्वासा को देखा तो उन्हें दुर्वासा के शाप के अमिट प्रभाव को जानकर भय हुआ फलतः शकुन्तला को शाप

से मुक्ति दिलाने के लिए प्रियंवदा दुर्वासा के पीछे जाती है और शाप से मुक्ति के लिए प्रार्थना करती है। प्रियंवदा की मधुर प्रार्थना से कुछ द्रवित होकर दुर्वासा ने कहा कि मेरा शाप अन्यथा (निष्फल) नहीं हो सकता किन्तु यदि शकुन्तला (दुष्यन्त से प्राप्त) किसी चिह्न/आभरण को दिखा देगी तो दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण हो जाएगा।

इसके बाद प्रियंवदा आश्रम आकर अनसूया से शापमुक्ति के बारे में बताती है। अनसूया और प्रियंवदा जब शकुन्तला के समीप पहुँचती हैं तब भी शकुन्तला दुष्यन्त के ध्यान में लीन रहती है। उस समय प्रियंवदा ने शकुन्तला को देखकर कहा कि – 'अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्' अर्थात् यह तो बायें हाथ पर अपने मुँह को रखकर दुष्यन्त की चिन्ता में ही लीन है इसे तो अपनी ही सुध-बुध नहीं है तो अतिथि को कैसे देखती? अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला के प्रति अत्यन्त संवेदित हैं। दोनों ने दुर्वासा से मिले शाप को शकुन्तला से छिपाने का निश्चय किया। प्रियंवदा ने भी अनसूया के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इसी वर्णन के साथ विष्कम्भक समाप्त होता है। विष्कम्भक के माध्यम से हमें निम्न सूचनाएँ मिलती हैं –

01 दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विधि से विवाह होने की सूचना।

02 दुर्वासा के शाप के प्रभाव से दुष्यन्त को शकुन्तला का विस्मरण।

03 किसी आभरण को दिखाने से दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण होना।

04 राजधानी लौटने की बेला में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को मुद्रिका/अंगूठी प्रदान करना।

05 दुष्यन्त को शकुन्तला के स्मरण हेतु मुद्रिका की उपादेयता।

इसके बाद रंगमंच पर सोकर उठे कण्व के शिष्य का प्रवेश होता है जो प्रवास से सद्यः लौटे महर्षि कण्व के आदेश से प्रातःकालीन समय का आकलन करने के लिए आश्रम से बाहर निकला है। आश्रम से बाहर निकलते ही उसे प्रातःकाल होने का निश्चय होता है।

इसके बाद अनसूया शकुन्तला के विषय में चिन्तन करती है कि यह दुर्वासा के शाप का ही प्रभाव है जो इतने दिन बीत जाने के बाद भी दुष्यन्त शकुन्तला को लेने नहीं आए। न ही उन्होंने शकुन्तला विषयक कोई पत्र भेजा। अनसूया दुष्यन्त के पास उसके द्वारा राजधानी लौटने के अवसर पर शकुन्तला को पहनाई गई मुद्रिका को भेजने के बारे में सोचती ही है कि इतने में उसे प्रियंवदा का स्वर सुनाई देता है। प्रियंवदा कहती है कि हे अनसूये! चलो शकुन्तला की विदाई करते हैं। अनसूया बड़े कौतूहल से पूछती है कि यह विदाई कैसे होने लगी अभी तो तात कण्व शकुन्तला के विवाह के विषय में भी अज्ञात हैं तो वह कहती है कि आज मैं शकुन्तला के पास– सुखपूर्वक निद्रा आई की नहीं ?– यह पूछने के लिए जब गई थी तो वहाँ पहले से ही तात कण्व विद्यमान थे वे लज्जा से शिर झुकाकर खड़ी शकुन्तला को गले लगाते हैं और उसके विवाह का अभिनन्दन करते हैं।

प्रियंवदा के इस वचन को सुनकर अनसूया कहती है कि तात काश्यप को यह सूचना कैसे मिली? तो प्रियंवदा ने कहा कि अशरीरिणी (शरीररहित) वाणी द्वारा तात को शकुन्तला के विवाह की सूचना मिलती है–

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ।।4/4।।

विदाई के अवसर पर शकुन्तला को विविध प्रकार से सजाया जाता है। सखियाँ आश्रम के अनेक सुलभ प्रसाधनों से शकुन्तला का अलङ्करण करती हैं किन्तु सखियों को लगता है कि वन के इन प्रसाधनों से शकुन्तला शोभित नहीं हो पा रही है क्योंकि शकुन्तला की देहवल्ली बहुमूल्य आभूषणों से सजाने योग्य है, इसलिए प्रियंवदा कहती है– **'आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते'।** इसी समय दो ऋषिकुमारों का प्रवेश होता है और उसमें से नारद नामक ऋषिकुमार कहता है कि– **'इदमलङ्करणम्। अलङ्क्रियतामत्रभवती'।** माता गौतमी ऋषिकुमार नारद से पूछती हैं कि यह बहुमूल्य आभूषण और परिधान कहाँ से प्राप्त हुए? तो ऋषिकुमार नारद ने उसे महर्षि कण्व के प्रभाव से प्राप्त हुआ बताया। गौतमी फिर पूछती है कि क्या कण्व जी ने मानसिक सिद्धि से इन आभूषणों को प्रकट किया तो दूसरा ऋषिकुमार कहता है कि तात ने हमें शकुन्तला के निमित्त वन-वनस्पतियों से पुष्प लाने के लिए आदेश दिया था। इसके बाद वन के उन वनस्पतियों ने ही एक-दूसरे वनस्पतियों से स्पर्धा करते हुए सम्मुखस्थ बहुमूल्य वस्तुओं को प्रदान किया है।

प्रियंवदा वन-वनस्पतियों की इस विलक्षण कृपा को शकुन्तला को पति के घर राजलक्ष्मी कहलाने के सौभाग्य का निमित्त अथवा सूचक मानने लगती है। अनसूया और प्रियंवदा आश्रम में रहने के कारण नगरोचित आभूषण पहनने पहनाने की विधि से सर्वथा अपरिचित हैं अतः वे दोनों चित्रकार द्वारा तैयार किये गये चित्रों को देख-देखकर विलक्षण रीति से शकुन्तला को आभूषण पहनाती हैं।

इसके बाद स्नान करके सरोवर से बाहर निकलते हुए साथ में कुछ सोचते हुए कण्व का रंगमंच पर प्रवेश होता है–

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।4/6।।

शकुन्तला की शृंगार विधि जैसे ही समाप्त होती है वहाँ महर्षि कण्व का प्रवेश होता है। कण्व को देखकर शकुन्तला लज्जा का अनुभव करती है। पास में स्थित माता गौतमी के आदेश से शकुन्तला कण्व का अभिवादन करती है तो महर्षि कण्व शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं।

कण्व के आशीर्वाद के पश्चात् शकुन्तला की विदाई का आरम्भ होता है। शकुन्तला को माता गौतमी, शाङ्र्गरव एवं शारद्वतमिश्रा हस्तिनापुर छोड़ने के लिए जाते हैं। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर महर्षि कण्व के मुख से शकुन्तला से सेवित समस्त प्राकृतिक वन वनस्पतियों को उसे विदाई की अनुमति देने के लिए अत्यन्त मार्मिक वचन निकलता है–

महर्षि कण्व के उक्त वचन को सुनकर शकुन्तला को वन-बन्धु-वृक्ष उसे पतिगृह जाने की अनुमति देते हैं। जब शकुन्तला पतिगृह को प्रस्थान करती है उस समय आश्रम की दशा अत्यन्त कारुणिक हो जाती है– हिरिणीयाँ दर्भों को चबाना बन्द कर देती हैं,

मयूर नाचना बन्द कर देते हैं तथा लताएँ भी मानो जीर्ण पत्तों को गिराकर अश्रु बहा रही हों। विदाई के अवसर पर कालिदास ने शकुन्तला, अनसूया और प्रियंवदा के कारुणिक संवाद का चित्रण किया है।

जब शकुन्तला आश्रम से कुछ दूर पहुँचती है तो उसके साथ चल रहे कण्व एवं अनसूया और प्रियंवदा को आगे जाने से रोकते हुए शाङ्र्गरव कहता है कि प्रिय व्यक्ति को जल दिखाई देने तक अनुसरण करना चाहिए, यह सरोवर का तीर दिखाई दे रहा है, हमें यहीं पर कुछ आवश्यक सन्देश देकर आप आश्रम लौट सकते हैं। तब महर्षि कण्व शाङ्र्गरव के माध्यम से दुष्यन्त को उपदेशात्मक सन्देश देते हैं–

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुचैः कुलं चात्मन–
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।4/7।।

दुष्यन्त को उपदेश देने के बाद महर्षि कण्व ने शकुन्तला को जो उपदेश दिया, वह भारतीय आदर्श एवं उदात्त मूल्यों को प्रस्तुत करता है–

सरोवर के तट पर दोनों सखियाँ शकुन्तला से कहती हैं कि यदि किसी कारण राजा दुष्यन्त तुम्हें पहचानने से मना करे तो उसे उसके द्वारा दी हुई मुद्रिका दिखा देना। सखियों की बात सुनकर शकुन्तला कहती है कि तुम्हारे इस सन्देह से मैं काँप जा रही हूँ, जिसे सुनकर दोनों सखियाँ शकुन्तला को आश्वस्त करती हैं– **'मा भैषीः। स्नेहः पापशङ्की'।** डरो मत, स्नेह पाप अथवा अनिष्ट की आशंका करता है। पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला महर्षि कण्व से कहती है कि तात! मैं अब आश्रम में कब आ सकूँगी?

इसके बाद गौतमी महर्षि कण्व से दिन बीतने की बात करती है और उन्हें आश्रम लौट जाने के लिए अनुरोध करती है तो कण्व भी शकुन्तला को आश्रम के अनुष्ठान सम्पादन की अनिवार्यता समझाते हुए आश्रम जाने के कहते हैं, तो शकुन्तला उनसे गले लगकर भावुक हो जाती है। शकुन्तला के इस भावुक वचन को सुनकर कण्व भी दुःखी होते हैं।

इसके बाद शकुन्तला पतिगृह के लिए प्रस्थान करती है, महर्षि कण्व के साथ अनसूया और प्रियंवदा भी आश्रम में प्रवेश करती हैं। शकुन्तला की सकुशल विदाई कर देने के बाद महर्षि कण्व को दायित्व से निवृत्ति की अनुभूति होती है, वह कहते हैं–

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।4/22।।

इस दृश्य के साथ चतुर्थ अंक की समाप्ति होती है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए –

i) विष्कम्भक की योजना से सूचित होता है–

(क) भूत की कथावस्तु (ख) भविष्य की कथावस्तु

(ग) वर्तमान की कथावस्तु (घ) भूत और भविष्य की कथावस्तु

ii) शकुन्तला को शाप मिलता है–

(क) दुष्यन्त से (ख) कण्व से

(ग) दुर्वासा से (घ) गौतम से

iii) कण्व को दुष्यन्त और शकुन्तला के विवाह की सूचना मिलती है–

(क) गौतमी से (ख) आकाशवाणी से

(ग) अनसूया से (घ) शिष्यों द्वारा

iv) दुर्वासा से उनके द्वारा दिए गए शाप से मुक्ति की प्रार्थना करती है–

(क) प्रियंवदा (ख) अनसूया

(ग) अनसूया और प्रियंवदा दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

v) 'भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः' इस कथन के वक्ता हैं–

(क) कण्व (ख) अनसूया

(ग) प्रियंवदा (घ) गौतमी

अभ्यास प्रश्न 1

1) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक का सार अपने शब्दो में लिखिए।

13.3 प्रकृति का मानवीकरण

महाकवि कालिदास के काव्यों विशेषकर 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में प्रकृति का मानवीकरण पदे-पदे देखा जा सकता है। प्रकृति की निर्जीव वस्तु भी जब कवि की प्रतिभा से सजीव जैसा व्यवहार करने लगे ऐसी स्थिति को प्रकृति का मानवीकरण कहते हैं। यह कालिदास की वर्णनचातुरी ही है जिससे उनके काव्यों में नाना प्रकार के वृक्ष, लता, वनस्पति आदि निर्जीव वस्तु भी मनुष्यों की तरह संवाद करते हुए दिखाई देते हैं। शकुन्तला आश्रम के समस्त प्राकृतिक वस्तुओं से सहोदर स्नेह रखती है, इसी कारण वृक्ष भी शकुन्तला के लिए कारुणिक बन जाते हैं वे भी शकुन्तला के प्रति अपना दायित्व समझते हुए उसकी विदाई के अवसर पर अनेक दिव्यातिदिव्य आभरण प्रदान करते हैं–

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै–
र्दत्तान्याभरणानि न किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।4/5।।

महाकवि कालिदास प्रकृति में इतने घुले-मिले, रचे-बसे हुए हैं कि उन्हें हर स्थल पर प्रकृति मानव स्वभाव धारण किए हुए लगती है– इसका सहज निदर्शन हमें– **'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या'**, – इस पद्य में मिलता है। जब व्यक्ति दुःख में होता है तो उसे आत्मीय पुरुषों का स्मरण होता है, शकुन्तला की विदाई के अवसर पर महर्षि कण्व ने अपनी पीड़ा आश्रम के अचेतन वृक्षों से व्यक्त की है। यदि कालिदास के मन में प्रकृति और मानव के मध्य कोई भिन्नता होती तो सम्भवतः वे कण्व के मुख से वैसा उद्गार व्यक्त नहीं कराते।

जब महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई करने हेतु वृक्षों और वनस्पतियों से अनुमति माँगते हैं तो वृक्ष भी मानवोचित व्यवहार को धारण कर शकुन्तला की विदाई हेतु अनुमति प्रदान करते हैं–

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।

परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ।।4/10।।

यहाँ पर वृक्षों ने शकुन्तला की विदाई हेतु अपनी अनुमति स्वयं पर आरूढ़ कोयलों के स्वर के माध्यम से दी है, अतः यह पद्य प्रकृति के मानवीकरण का उत्तम उदाहरण है।

जब शकुन्तला का तपोवन से वियोग हो रहा होता है तब उसे बहुत दुःख होता है, इस पर प्रियंवदा उससे कहती है कि यह दुःख केवल तुम्हें ही नहीं है बल्कि जो पीड़ा तपोवन को छोड़ते हुए तुम्हें हो रही है वही पीड़ा देखो तपोवन को भी हो रही है– **'न केवलं तपोवनकातरा सख्येव। त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते'**–

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।4/12।।

जैसे किसी के वियोग में उसके साथ रह रहे आत्मीय जन दुःख पाते हैं उसी प्रकार आश्रम की हिरणियाँ भी शकुन्तला की विदाई से दुःख की अनुभूति कर रही हैं, मयूरों ने शकुन्तला के वियोग में नाचना बन्द कर दिया है और पीले पत्तों को गिराने के बहाने मानो लताएँ रो रही हैं। यहाँ भी लता आदि प्राकृतिक वस्तु में मानवोचित अश्रुपात आदि व्यवहार का वर्णन होने से प्रकृति का मानवीकरण देखा जा सकता है।

इस तरह आप देख सकते हैं कि महाकवि कालिदास के काव्य में प्रकृति और मानव का शाश्वत सम्बन्ध विद्यमान है। जिन प्राकृतिक वस्तुओं को लोग निर्जीव मानते हैं वे ही महाकवि कालिदास के काव्य में मानवोचित व्यवहार करती हुईं पाठक को संवेदना के शीर्ष स्तर पर पहुँचाती हैं।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में सही विकल्प का चयन कीजिए–

i) 'उद्गलितदर्भकवला' विशेषण है–

(क) मयूरों का (ख) मृगियों का

(ग) लताओं का (घ) इनमें से कोई नहीं

ii) 'दर्भ' का पर्यायवाची है–

क) लता ख) कुश

ग) वृक्ष घ) कंटक

iii) 'परभृत' पद से बोध होता है–

क) कौवे का ख) तोते का

ग) कोयल का घ) सिंह का

iv) 'क्षौम' पद का अर्थ है–

क) फल ख) आभूषण

ग) रेशमी वस्त्र घ) इनमें से कोई नहीं

v) 'लाक्षारसः' पद का अर्थ है–

क) सुगन्धितवस्तु ख) महावर

ग) कंगन घ) सिन्दूर

अभ्यास प्रश्न 2

1) महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन पर टिप्पणी लिखिए।

13.4 कालिदास की रचनाओं में ध्वन्यात्मकता

महाकवि कालिदास के काव्यों में ध्वनि की सत्ता निरन्तर विद्यमान है। महाकवि कालिदास शब्दों के प्रयोग में सिद्ध हैं। कालिदास अपने काव्यों में व्यङ्ग्यार्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों का ग्रहण करते हैं। काव्य के वाच्यार्थ/अभिधेयार्थ/मुख्यार्थ के बोध के बाद जो व्यङ्ग्यार्थ की अभिव्यक्ति होती है उसी को ध्वनि कहते हैं, काव्यशास्त्रियों ने ध्वनि को ही काव्य की आत्मा माना है। यह ध्वनि तीन प्रकार की होती है– 01 रसध्वनि, 02 अलङ्कारध्वनि, 03 वस्तुध्वनि। महाकवि कालिदास के काव्यों में ध्वनि के समस्त प्रकारों की सहज स्थिति सहृदयों के द्वारा अनुभूत की जाती है, जैसे–

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।।4/3।।

प्रस्तुत पद्य में अलंकारध्वनि है क्योंकि यहाँ चन्द्रमा के अस्त होने के व्यवहार से दुष्यन्त के राजधानी लौट जाने (अथवा शाप के कारण शकुन्तला का विस्मरण हो जाने) का व्यवहार आरोपित है, कुमुदिनी नष्ट कान्ति वाली हो गई है– से शकुन्तला की कान्ति नष्ट होना सूचित होता है, इस कारण चन्द्र और कुमुदिनी में क्रमशः दुष्यन्त-शकुन्तला– रूप नायक, नायिका के व्यवहार के आरोपण से समासोक्ति अलंकार है।

इसी तरह 'यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया' इस पद्य में 'यास्यति' पद की व्यञ्जना दर्शनीय है। 'यास्यति' पद के प्रयोग से कण्व का दुःखाधिक्य प्रकट होता है। इस श्लोक में 'यास्यति' के स्थान पर 'याति' पद का प्रयोग किया जा सकता था जिससे अर्थ होता कि शकुन्तला जा रही है, इसलिए कण्व को अनेक प्रकार से दुःख हो रहा है किन्तु 'याति' पद के प्रयोग से कारुणिकता में न्यूनता होती, क्योंकि आत्मीय जनों के हो रहे वियोग से तो सभी को दुःख होता है, किन्तु कण्व को शकुन्तला के भावी वियोग के चिन्तनमात्र से ही अनेक प्रकार का दुःख हो रहा है, जब शकुन्तला साक्षात् जा रही होगी तो उन्हें कितना दुःख होगा। अतः 'यास्यति' पद के प्रयोग से कण्व की अतिशय दुःखाभिव्यक्ति को समझने में सहायता मिलती है।

इसी प्रकार 'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या' इस पूर्वोक्त पद्य के अनेक पदों में ध्वन्यात्मकता है, इसमें– 'युष्मासु अपीतेषु या जलं पातुं प्रथमं न व्यवस्यति' अर्थात् जो तुम्हारे जल पिये बिना जल नहीं पीती थी (वह शकुन्तला जा रही है) – यह अर्थ अभीष्ट है किन्तु यह अर्थ 'अव्यवस्यत्' पद के प्रयोग से सम्भव था।

'व्यवस्यति' इस वर्तमान काल के लट् लकार से यह अर्थ आता है कि– जो तुम्हारे जल पिये बिना जल नहीं पीती है। 'व्यवस्यति' पद से यह ध्वनि निकलती है कि शकुन्तला की अब भी वही स्थिति है अर्थात् अब भी वह तुम्हें जल पिलाकर ही जल पीती है। 'प्रियमण्डनाऽपि' पद के प्रयोग से किसलयों को आभूषण के रूप में तोड़ने की योग्यता सूचित होती है। 'सर्वैरनुज्ञायताम्' पद से यह ध्वनि निकलती है कि सभी मिलकर ही शकुन्तला को जाने की अनुमति दो, पृथक्-पृथक् अनुमति देने से विलम्ब होने की सम्भावना है। पतिगृहम्– पति के घर को– इससे अनुमति देने का उचित समय है कि व्यंजना होती है।

चतुर्थ अंक में करुण रस का प्रवाह है जो निम्न पद्य में तीक्ष्णतर हो गया है–

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।

उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः।।4/21।।

इस पद्य में शकुन्तला के वियोग से कण्व को होने वाले शोक का वर्णन है जिससे करुण रस व्यक्त होता है।

13.5 काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला

अभी तक आपने इस इकाई के माध्यम से 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक से सम्बन्धित कथावस्तु के अतिरिक्त कुछ काव्यगत-विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया। अब महाकवि कालिदास के विषय में अत्यन्त लोकप्रिय सूक्ति– 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' की अन्तर्निहित भावना के विषय में आपको ज्ञान प्राप्त करना है। कालिदास के विषय में प्रचलित उक्त सूक्ति का पूर्ण आकार निम्नलिखित है–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

शकुन्तलायां चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

अर्थात् काव्यों अथवा काव्यविधाओं में नाटक सबसे रमणीय है, नाटकों में भी महाकवि कालिदास प्रणीत– 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक रमणीयतम है और इस नाटक के समग्र अंकों में चतुर्थ अंक सर्वोत्कृष्ट है तथा चतुर्थ अंक में भी चार श्लोक रमणीयता की पराकाष्ठा हैं।

अब आपको– 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहने के मूल आशय पर ध्यान देना चाहिए, काव्य की अनेक विधाएँ हैं, जैसे– महाकाव्य, खण्डकाव्य, शतककाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य तथा नाटक किन्तु काव्य की उन समस्त विधाओं में नाटक का स्थान सबसे ऊपर है, क्योंकि काव्य की अन्यविधाओं में हम केवल पाठ का श्रवण करते हैं किन्तु नाटक में आप पात्रों के पाठ का श्रवण तथा पाठानुगुण उनके अभिनय का साक्षात् दर्शन भी करते हैं जिससे पाठ को समझने में हमें कठिनाई नहीं आती। इस कारण काव्यविधाओं में नाटक का स्थान सर्वोच्च है। संस्कृत साहित्य में नाटक भी भिन्न-भिन्न नाटककारों के द्वारा लिखे गये हैं, किन्तु सहृदयों ने उन नाटकों में भी नाटकीय गुणों के मानक को पूरा करने की दृष्टि से 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को सबसे योग्य पाया है अतः उन्होंने– 'तत्र रम्या शकुन्तला' कहा। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में सात अंक हैं सभी अंक सहृदय के हृदय को आह्लाद देने में समर्थ हैं तथापि इसका चतुर्थ अंक अर्थ की रमणीयता एवं प्राणवत्ता का संचार करने की दृष्टि से सबसे श्लाघनीय है। यद्यपि इस

चतुर्थ अंक के प्रत्येक गद्यात्मक संवाद एवं पद्यात्मक संवाद रचना के गुणों को धारण करने वाले हैं और सहृदयों के मन में आनन्द भरने वाले हैं, तो भी संवाद की तलस्पर्शिता के कारण सहृदयों ने इसके चार पद्यों को सर्वश्रेष्ठ माना, जिसमें– 01 यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं, 02 पातुं न प्रथमम्, 03 शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीं वृत्तिं सपत्नीजने, 04 अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान्– श्लोक शामिल हैं। कुछ सहृदय चतुर्थ श्लोक के रूप में– 'अर्थो हि कन्या परकीय एव'– को स्थान देते हैं।

उक्त सूक्ति की यदि हम कुछ मीमांसा करें तो पाते हैं कि महाकवि कालिदास का विशेष रूप से यह चतुर्थ अंक उन्हें कनिष्ठिकाधिष्ठित बनाता है। यह चतुर्थ अंक की कथा योजना ही है जिसके ऊपर इस नाटक का नामकरण किया गया है। इस अंक में दो पड़ाव आते हैं पहला विष्कम्भक के द्वारा अतीत की घटनाओं की सूचना देना, जिसमें शकुन्तला के संग दुष्यन्त के विवाह की सूचना तथा विवाहोपरान्त दुष्यन्त के राजधानी हस्तिनापुर लौट जाने की सूचना दी गई है। विष्कम्भक के माध्यम से शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि के द्वारा आतिथ्य सत्कार नहीं करने के कारण शाप मिलना भी बताया गया है। इसके बाद नाटक रंगमंच पर क्रमशः पात्रों के संवाद की गति के साथ आगे बढ़ता है। जब सोमतीर्थ से महर्षि कण्व का आगमन होता है तो दोनों सखियाँ– अनसूया और प्रियंवदा महर्षि कण्व से शकुन्तला के विवाह एवं दुष्यन्त संसर्ग से उसके गर्भिणी होने के विषय में सूचना तो देना चाहती हैं किन्तु उन्हें प्रकृतिसुलभ लज्जा और संकोच दोनों का अनुभव होता है,– यह भारतीय आदर्श भी है कि कन्यायें बड़ों से इस प्रकार की बातें नहीं करतीं। अब महर्षि कण्व को उनकी अनुपस्थिति में आश्रम में घटित घटनाओं से परिचित कौन कराए? यह प्रश्न उपस्थित होता है किन्तु महाकवि कालिदास अपनी नाट्यचातुरी से अशरीरिणी वाणी के द्वारा कण्व को विगत समस्त घटनाओं से परिचित कराते हैं। विदाई का समस्त प्रसंग सहृदय पाठकों को संवेदना के उच्च क्षितिज पर पहुँचाता है। महर्षि कण्व के द्वारा शकुन्तला के प्रति दिया गया उपदेश भारतीय संस्कृति भारतीय आचारपद्धति को व्यक्त करता है। पिता का अपनी कन्या के प्रति जो प्रेम है वह साथ रहने पर व्यक्त हो न हो किन्तु जब कन्या की विदाई होती है तो उस विदाई से कण्व जैसा महर्षि भी अपनी धैर्य-परम्परा को छोड़कर सामान्य पुरुष के समान बन जाता है– 'वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः'। इस अंक की शापयोजना वस्तुतः इस नाटक का प्राण है, जो आगे के अंकों को पढ़ने के लिए पाठकों को अनायास प्रेरित करता है।

13.6 उपमा कालिदासस्य

हमारे संस्कृत कवियों की रचना में कुछ न कुछ पारस्परिक विशेषता पाई जाती है, कोई कवि उपमा अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग करने से प्रसिद्ध है तो कोई अर्थगौरव की दृष्टि से। इसी तरह कोई कवि पदों का समुचित प्रयोग करने में प्रसिद्ध है। इस विषय में किसी विद्वान् का प्रसिद्ध कथन है –

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

अर्थात् महाकवि कालिदास उपमा अलङ्कार के प्रयोग में प्रसिद्ध हैं, भारवि अर्थगौरव के कारण प्रसिद्ध हैं, दण्डि पद पटुता के कारण प्रसिद्ध हैं तथा महाकवि माघ – उपमा अलङ्कार, अर्थगौरव और पदलालित्य, इन तीनों गुणों को समान रूप से प्रयोग

करने में प्रसिद्ध हैं। यद्यपि महाकवि कालिदास की प्रसिद्धि में अनेक कारण हैं किन्तु अनेक सहृदय कालिदास को सटीक उपमा देने में सिद्ध मानते हैं, इस दृष्टि से कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में उपमा के कुछ रुचिकर स्थल को प्रस्तुत किया जा रहा है। दुर्वासा द्वारा शकुन्तला को शाप देने के अवसर पर 'कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव' का प्रयोग किया गया है अर्थात् वह (दुष्यन्त) तुम्हें पागल की तरह भूल जाए। जैसे पागल को अपने द्वारा किए हुए किसी काम की स्मृति नहीं रहती वैसे ही दुष्यन्त भी तुम्हें विस्मृत कर देगा। यहाँ जो दुष्यन्त की उपमा पागल से दी गई है वह सटीक है, राजा दुष्यन्त उपमेय है प्रमत्तः उपमान है, विस्मरण साधारण धर्म है इव उपमावाचक पद है। इन चारों उपमा सामग्री के होने से यह पूर्णोपमा है। उपमा में उपमेय की अपेक्षा उपमान अधिक गुणों वाला होता है इस सिद्धान्त का पालन महाकवि कालिदास ने किया है क्योंकि दुष्यन्त और प्रमत्त दोनों में विस्मरण रूपी गुण है किन्तु दुष्यन्त का विस्मरण प्रमत्त की तरह नहीं है प्रमत्त तो सभी बात भूल जाता है किन्तु दुष्यन्त को केवल शकुन्तला विषयक बातों का विस्मरण होगा, अन्य विषयों की स्मृति उसे रहेगी। इस कारण उपमेय की अपेक्षा उपमान में अधिक गुण है।

महाकवि कालिदास ने कई जगह कुछ विचित्रता देने के लिए उपमेय का ग्रहण किए बिना केवल उपमान के द्वारा कथन किया है जैसे– 'को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति' (कौन गरम पानी से नवलता को सींचता है)। यह उक्ति प्रियंवदा की है जो अनसूया और प्रियंवदा के दुर्वासा द्वारा दिए गए शाप को शकुन्तला से छिपाने रखने के लिए परामर्श करने के अवसर पर प्रियंवदा द्वारा कही गई है, यहाँ नवमालिका और उष्णोदक उपमान हैं। यहाँ उपमानरूप नवमालिका का उपमेय शकुन्तला है तथा उपमान रूप उष्णोदक का शाप उपमेय है। यद्यपि उपमेय को शब्द से नहीं कहा गया है किन्तु कालिदास के कथ्य में उपमा की इतनी सटीकता है कि पाठक के सामने लुप्त हुए उपमेय उपस्थित हो जाते हैं, जिससे लुप्तोपमा भी पूर्णोपमा की तरह लगती है।

एक अन्य प्रसंग में जब महर्षि कण्व को शकुन्तला दुष्यन्त के गान्धर्व विधि से विवाहित होने का ज्ञान होता है तो कण्व ने शकुन्तला से उसके विवाह का अनुमोदन करते हुए कहा– 'सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता' (योग्य शिष्य को दी गई विद्या की तरह तुम अशोचनीय हो गई हो) यहाँ भी उपमा सारगर्भित है। जिस तरह गुरु अपनी विद्या को सभी को नहीं बल्कि योग्य शिष्य को देना चाहता है, और उसे देकर वह विश्वास में हो जाता है कि अब यह मेरी विद्याओं का ठीक से प्रचार-प्रसार कर रक्षा करेगा उसी तरह मैं (तुम्हारा पिता भी) दुष्यन्त रूपी वर का चयन करने वाली तुम्हारे विषय में चिन्ता मुक्त हो गया हूँ क्योंकि दुष्यन्त तुम्हारा आजीवन ध्यान रखेगा।

शकुन्तला के विवाह के प्रसंग में महर्षि कण्व को हुई आकाशवाणी में उपमा का मनोरम प्रयोग है–

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।।4/4।।

यहाँ शकुन्तला की उपमा शमी से की गई है। महाकवि कालिदास प्रकृति के इतने पारखी हैं कि उन्हें प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य के अलावा आन्तरिक सौन्दर्य का भी ज्ञान है। कवि शमी के गर्भगत विशेषताओं से परिचित यदि न होता तो वह शमी का प्रयोग

न करके किसी अन्य उपमान का प्रयोग करता। यह अलग बात है कि उस उपमान से सौन्दर्य आ पाता की नहीं किन्तु जिस उपमान से सौन्दर्य आ सकता है महाकवि कालिदास उससे सर्वथा परिचित हैं। शमी के भीतर अग्निमय तेज विद्यमान रहता है, इस ज्ञान को कालिदास ने सही स्थल पर उतार दिया क्योंकि शकुन्तला के भीतर पल रही सन्तान सामान्य नहीं है वह भी तेजरूप है, शमी भी पवित्र तो शकुन्तला भी पवित्र। इसलिए महाकवि कालिदास शकुन्तला की तुलना शमी से कर हैं। जिससे पूरा प्रसंग रोचक बन जाता है। इसी तरह महाकवि कालिदास ने अनेक स्थलों पर उपमालंकार का मनोरम प्रयोग किया है।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में सही विकल्प का चयन कीजिए–

i) 'काव्येषु.....रम्यम्'–

(क) गद्य (ख) पद्यम् (ग) चम्पू (घ) नाटक

ii) नाटक के लिए सत्य कथन है–

(क) यह केवल पठनीय होता है

(ख) यह केवल दर्शनीय होता है

(ग) यह पठनीय और दर्शनीय दोनों होता है

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

iii) 'कनिष्ठिकाधिष्ठित' विशेषण है –

(क) माघ के लिए

(ख) भारवि के लिए

(ग) भास के लिए

(घ) कालिदास के लिए

iv) शकुन्तला के विवाह के पूर्व महर्षि कण्व गये थे–

(क) इन्द्रलोक

(ख) प्रयागतीर्थ

(ग) सोमतीर्थ

(घ) केदारतीर्थ

v) महाकवि कालिदास प्रसिद्ध हैं–

(क) उपमा के लिए

(ख) अर्थगौरव के लिए

(ग) पद लालित्य के लिए

(घ) इनमें से कोई नहीं

अभ्यास प्रश्न

1) महाकवि कालिदास अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, स्पष्ट कीजिए।

13.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपका 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के चतुर्थ अंक से परिचय हुआ। इस इकाई को पढ़कर आपको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसे और दृढ़ करने की दृष्टि से यहाँ समस्त इकाई का सारांश प्रस्तुत जा रहा है। सबसे पहले आपने चतुर्थ अंक की कथावस्तु के बारे में पढ़ा। इस अंक का प्रारम्भ विष्कम्भक योजना से होता है। विष्कम्भक के माध्यम से नाटक की भूत और भावी घटनाओं के बारे में सूचना दी जाती है। चतुर्थ अंक के विष्कम्भक के द्वारा शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विधि से विवाह हो जाने की सूचना दी जाती है। विष्कम्भक के माध्यम से विवाहोपरान्त दुष्यन्त के राजधानी (हस्तिनापुर) चले जाने की भी सूचना दी गई है। राजा दुष्यन्त के राजधानी चले जाने पर शकुन्तला उसी के ध्यान में लीन रहने लगती है। एक दिन सुलभकोपी दुर्वासा ऋषि का आश्रम में आगमन होता है, तो शकुन्तला दुष्यन्त के ध्यान में लीन रहने के कारण उनका आतिथ्य तो दूर उन्हें देख भी नहीं पाती, जिससे महर्षि दुर्वासा क्षुब्ध होकर शकुन्तला को शाप देते हैं कि तुमने जिसके ध्यान में लीन होकर मुझ जैसे तपस्वी का अनादर किया है वह व्यक्ति जैसे पागल किसी कार्य को करके बाद में उसे भूल जाता है वैसे ही (दुष्यन्त) तुम्हें भूल जाए– यह घटना भी विष्कम्भक के माध्यम से ही सूचित की गयी है। प्रियंवदा प्रार्थनापूर्वक दुर्वासा से शाप मुक्ति का उपाय पूछती है तो दुर्वासा ने दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को दी हुई किसी वस्तु को दिखाने से शाप मुक्ति बताते हैं तथा सखियाँ शकुन्तला को शाप की बात नहीं बताने के विषय में निर्णय लेती हैं– इस वर्णन के साथ विष्कम्भक योजना की समाप्ति होती है। बाद में महर्षि कण्व का सोमतीर्थ से आगमन होता है, आगमन के पश्चात् उन्हें शकुन्तला विषयक उनकी अनुपस्थिति में घटी सारी घटनाओं का ज्ञान अशरीरिणी वाणी के द्वारा हो जाता है। इसके बाद महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई के बारे में निर्णय लेते हैं। महाकवि कालिदास ने विदाई के प्रसंग का बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया है।

इसके बाद महाकवि कालिदास के प्रकृति के मानवीकरण विषय से आपका परिचय होता है। आप पढ़ते हैं कि कालिदास ने आश्रम की निर्जीव वस्तु में भी प्राण का संचार करके उससे पुरुषोचित कार्य तथा व्यवहार कराया है, जो कालिदास के विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। आप पढ़ते हैं कि कैसे आश्रम के वृक्षों ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर रेशमी वस्त्र तथा आभरण प्रदान किया है। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर हिरणियाँ दर्भ को चबाना बन्द कर देती हैं तथा मुँह में विद्यमान कुशों को उगलना प्रारम्भ कर देती हैं, मयूरों ने नर्तन करना बन्द कर दिया है, लताएँ भी मानो पुराने पत्तों को गिराने के बहाने अश्रु गिरा रही हों।

इसके बाद कालिदास के काव्यों में ध्वन्यात्मकता के विषय से आप परिचित होते हैं। इस क्रम में आप जानते हैं कि– ध्वनि क्या होती है? ध्वनि के कितने भेद हैं? कवि अपने काव्य में व्यङ्ग्यार्थ को व्यक्त करने वाले शब्द का प्रयोग करता है, ऐसे शब्द को व्यञ्जक शब्द कहा जाता है। सहृदय जन अपनी सहृदयता से उस व्यञ्जक शब्द को जानकर काव्यात्मतत्त्व का आनन्द लेते हैं। इस दृष्टि से आप महाकवि कालिदास के विविध पदों की व्यंजना से परिचित होते हैं।

महाकवि कालिदास के काव्य के विषय में प्रचलित– 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' इस सूक्ति की मूल भावना से आपका परिचय होता है। इस क्रम में आप

महाकवि कालिदास की काव्य कला और इसके आन्तरिक सौन्दर्य पक्ष को जानते हैं। कथ्य के निर्वाह में महाकवि कालिदास के सामर्थ्य और चातुर्य से आपका परिचय होता है।

13.8 शब्दावली

वैक्लव्यम्	–	विकलता का भाव
प्रियमण्डनापि	–	प्रिय है आभूषण जिसको वह
अनुमतगमना	–	अनुमति मिल गई है जाने की जिसको वह
प्रतिवचनीकृतम्	–	उत्तर दिया गया
प्रतिपत्तिः	–	बहुमान, आदर, बोध
दाराः	–	स्त्री
आयत्तम्	–	अधीन

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
2) संस्कृत साहित्य का इतिहास
3) निबन्धशतकम्
4) कालिदास का भारत

13.10 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) (घ) भूत और भविष्य की कथावस्तु, ii) (ग) दुर्वासा का, iii) (ख) आकाशवाणी से, iv) (क) प्रियंवदा, v) (क) कण्व

बोध प्रश्न 2

1) i) (ख) मृगियों का, ii) (ख) कुश, iii) (ग) कोयल का, iv) (ग) रेशमी वस्त्र, v) (ख) महावर

बोध प्रश्न 3

1) i) (घ) नाटकम्, ii) (ग) यह पठनीय और दर्शनीय दोनों होता है, iii) (घ) कालिदास के लिए, iv) (ग) सोमतीर्थ, v) (क) उपमा के लिए

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 14 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क)–भाग 1

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) – श्लोक 1-11

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक की कथा से परिचित होंगे।
- महाकवि कालिदास की भाषा-शैली से परिचित होंगे।
- अनसूया एवं प्रियंवदा का शकुन्तला के प्रति कितना अधिक स्नेह था, यह जान सकेंगे।
- महाकवि कालिदास के व्यावहारिक ज्ञान से परिचित होंगे।

14.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! 12वीं एवं 13वीं इकाई में आपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के विषय में अध्ययन किया। इस नाटक में सात अंक हैं जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह और पुनर्मिलन का वर्णन किया गया है। आपके पाठ्यक्रम में इस नाटक का चतुर्थ अंक रखा गया है। आप जानते हैं कि इस नाटक का चतुर्थ अंक अत्यन्त रमणीय है– ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला .....।।'' इस इकाई में आप पढेंगे कि शकुन्तला की दोनों सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा उससे कितना अधिक स्नेह करती हैं। दोनों दुर्वासा ऋषि के शाप का वृत्तान्त शकुन्तला से इसलिए नहीं कहतीं कि वह जब यह जानेगी तो अत्यन्त दुःखी होगी। दोनों शकुन्तला की विदायी के लिए उसको भली-भाँति अलंकृत करती हैं। उसकी विदायी के अवसर पर ऋषि कण्व भी अत्यन्त दुःखी हैं। पशु-पक्षी भी अपनी मधुर ध्वनि के माध्यम से शकुन्तला को विदायी की अनुमति प्रदान करते हैं। इस इकाई में आप चतुर्थ अंक के संवादों और श्लोक सं. 1-11 तक का अध्ययन करेंगे।

14.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) – श्लोक 1-11

मूलपाठ –

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।)

अनसूया– हला प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्। (हला पिअंवदे, जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति मे हिअअं। तह वि एतिअं चिन्तणिज्जं।)

प्रियंवदा – कथमिव? (कहं विअ।)

अनसूया – अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति। (अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि वा ण वेति।)

प्रियंवदा – विस्त्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति। (वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअ अ आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति।)

अनसूया – **यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्।** (जह अहं देक्खामि, तह तस्स अणुमदं भवे।)

प्रियंवदा – **कथमिव?** (कहं विअ।)

अनुवाद – (तदनन्तर फूलों को चुनने का अभिनय करती हुई दो सखियाँ प्रवेश करती हैं।)

अनसूया – सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व विधि से शकुन्तला का विवाह होकर कल्याण हो गया है तथा उसने अपने अनुकूल पति को प्राप्त कर लिया है, इसलिए मेरा हृदय प्रसन्न है, फिर भी यह बात तो सोचने योग्य है।

प्रियंवदा – वह क्या?

अनसूया – अब वे राजर्षि यज्ञ को समाप्त करके, ऋषियों से विदा लेकर अपने नगर में प्रवेश करके अन्तःपुर में पहुँच गए हैं। अब वह यहाँ की बातों को स्मरण करेंगे या नहीं।

प्रियंवदा – निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशेष आकृतियाँ गुणों की विरोधी नहीं होतीं किन्तु पिता कण्व इस वृतान्त को सुनकर क्या सोचेंगे?

अनसूया – जैसा मैं समझती हूँ, यह विवाह उन्हें स्वीकार होगा।

प्रियंवदा – कैसे?

व्याख्या –

अनसूया और प्रियंवदा के संवाद से सूचित होता है कि दुष्यन्त एवं शकुन्तला का विवाह सम्पन्न हो गया तथा दोनों ने कुछ समय पति-पत्नी के रूप में व्यतीत किया। यज्ञ कार्य के समाप्त हो जाने पर दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट गए। काफी समय व्यतीत हो जाने पर भी उन्होंने शकुन्तला को बुलाने के लिए कोई सन्देश नहीं भेजा।

पिता कण्व भी सोमतीर्थ से नहीं आये। अनसूया को चिन्ता है कि दुष्यन्त को यहाँ का वृत्तान्त याद रहेगा या नहीं। प्रियंवदा को चिन्ता है कि पिता कण्व इस वृत्तान्त को सुनकर न जाने क्या सोचेंगे? प्रियंवदा कहती है कि दुष्यन्त की जैसी सौम्य एवं तेजस्विनी आकृति है, उसी के अनुसार उसके आन्तरिक गुण होने चाहिए। दुष्यन्त शकुन्तला को धोखा देगा, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए।

शब्दार्थ – कुसुमावचयम् = फूलों को चुनना, विस्त्रब्धा भव = चिन्ता न करो, गुणविरोधिनः = गुणों से विरोध करने वाले, गान्धर्वेण = गान्धर्व विवाह की विधि से, निर्वृत्तम् = सन्तुष्ट।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवचय = अव+चि+घञ्, निर्वृत्तकल्याणा = निर्वृत्तं सम्पन्नं कल्याणं विवाहमंगलं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), निवृत्त = निर्+वृ+क्त, इष्टि = यज्+क्तिन्, आकृतिविशेषा = आकृतीनां विशेषाः (तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

अनसूया – गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति, नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः। (गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो।)

प्रियंवदा – (पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि। (सहि, अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं।)

अनसूया – ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया। (णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ।)

प्रियंवदा – युज्यते। (जुज्जदि।)

(इति तदेव कर्माभिनयतः)

(नेपथ्ये)

अयमहं भोः।

अनसूया – (कर्णं दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव निवेदितम्। (सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं।)

प्रियंवदा – ननूटजसन्निहिता शकुन्तला। (णं उडजसण्णिहिदा सउन्दला।)

अनसूया – अद्य पुनर्हृदयेनासन्निहिता। अलमेतावद्भिः कुसुमैः। (अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं।)

(इति प्रस्थिते)

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि,

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।1।।

अन्वयः – अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितं तपोधनं वेत्सि न माम् उपस्थितम्। स्मरिष्यति त्वां न स बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति।

अनुवाद–

अनसूया – गुणशाली पुरुष को कन्या देना है, यह उनका प्रथम संकल्प था। उस संकल्प को यदि भाग्य ही सम्पादित कर देता है तो बिना प्रयास के ही गुरुजन कृतार्थ हो गए।

प्रियंवदा – (फूलों के पात्र को देखकर) सखि, पूजन कार्य के लिए पर्याप्त फूल चुन लिए हैं।

अनसूया – किन्तु सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता का पूजन भी तो करना है।

प्रियंवदा – ठीक है।

(फिर उसी कार्य का अभिनय करती है)

(नेपथ्य में)

हे! यह मैं आया हूँ। यहाँ कौन है?

अनसूया – (कान देकर) सखि, जैसे किसी अतिथि ने पुकारा है।

प्रियंवदा – कुटी में शकुन्तला उपस्थित ही है। (मन में) पुनः आज हृदय से उपस्थित नहीं है।

अनसूया – अच्छा, इतने फूल पर्याप्त हैं। (यह कहकर दोनों चल देती हैं।) अहा, अतिथि का तिरस्कार करने वाली!

अनन्यमन से जिसका ध्यान करती हुई तू अतिथि रूप में उपस्थित मुझ तपस्वी को नहीं देख रही है, वह व्यक्ति स्मरण कराया जाता हुआ भी तुमको उसी प्रकार स्मरण नहीं करेगा, जैसे कि पागल व्यक्ति पहले कही हुई बात को समरण नहीं करता।।1।।

व्याख्या–

प्रियंवदा चिन्ता करती है कि पता नहीं पिता कण्व इस विवाह के विषय में क्या सोचेंगे? अनसूया कहती है कि मेरी समझ से पिता को यह विवाह स्वीकार होगा क्योंकि गुणवान् व्यक्ति से शकुन्तला का विवाह करना उनका संकल्प था। जिसे शकुन्तला ने अपने भाग्य से प्राप्त कर लिया है। शकुन्तला तो दुष्यन्त के ध्यान में निमग्न है और उसको बाह्य संसार का बोध नहीं है परन्तु उसकी दोनों सखियाँ उसके सौभाग्य के लिए प्रतिदिन पूजा करती हैं, जिससे कि उसका अनिष्ट न हो।

शब्दार्थ – प्रथमः संकल्पः = मुख्य निश्चय या विचार, अनायासेन = बिना किसी प्रयास के, सौभाग्यदेवता = ईष्ट देव, युज्यते = तुम्हारी बात ठीक है, निवेदितम् = निवेदन, प्रमत्तः = उन्मत्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निवेदितम् = नि+विद्+क्त, अनन्यमानसा = अनन्यं मानसं यस्याः सा, प्रमत्तः = प्र+मद्+क्त, विचिन्तयन्ती = वि+चिन्त+शतृ+ङीप्।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकर है – **'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'** अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण हो, वहाँ वंशस्थ छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – हा धिक्, हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। (हद्धी, हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। ण हु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ वेअबलुब्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो।)

अनसूया – कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि। (को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।)

प्रियंवदा – तथा। (तह।) **(इति निष्क्रान्ता।)**

अनसूया – (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्। (अम्मो, आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।) **(इति पुष्पोच्चयं रूपयति।)**

(प्रविश्य)

प्रियंवदा – सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। (सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।)

अनसूया – (सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। (तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि।)

प्रियवंदा – यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मषर्यितव्य इति। (जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।)

अनसूया– ततस्ततः। (तदो तदो।)

अनुवाद–

प्रियंवदा – हाय! हाय! अनर्थ हो गया। किसी आदरणीय व्यक्ति के प्रति शून्य हृदय शकुन्तला ने अपराध कर दिया। (सामने देखकर) और किसी साधारण व्यक्ति के प्रति नहीं। यह सरलता से क्रुद्ध हो जाने वाले दुर्वासा ऋषि हैं। इस प्रकार शाप देकर वेग के बल से उछलती हुई और न रोकी जा सकने वाली गति से लौट रहे हैं।

अनसूया – अग्नि के अतिरिक्त और कौन वस्तु जलाने में समर्थ होगी? जा और पैरों में प्रणाम करके इनको लौटा ला, तब तक मैं पूजा का सामान तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा – अच्छा। (यह कहकर निकल गयी)

अनसूया – (एक पग के बाद फिसलने का अभिनय करके) ओह, घबराहट से फिसलती हुई गति वाले मेरे हाथ से पुष्पों का पात्र गिर गया। (यह कहकर फूलों को उठाने का अभिनय करती है।)

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा – सखी! स्वभाव से टेढ़े वह दुर्वासा किसकी विनती स्वीकार करते हैं? तब भी मैंने उनको कुछ दयालु कर लिया।

अनसूया – (मुस्कुराकर) उनके लिए यह भी बहुत है। बताओ।

प्रियंवदा – जब उन्होंने लौटना नहीं चाहा तो मैंने निवेदन किया– भगवन्!

आपके तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्री का यह पहला अपराध है, यह समझकर आप इस एक अपराध को क्षमा कर दीजिए।

अनसूया – उसके पश्चात्।

व्याख्या– दुर्वासा ऋषि अतिथि के रूप में आश्रम के द्वार पर उपस्थित हुए और उन्होंने शकुन्तला को पुकारा। परन्तु दुष्यन्त के ध्यान में मग्न शकुन्तला ने ऋषि की पुकार को नहीं सुना। स्वभाव से क्रोधी होने के कारण वह शकुन्तला को शाप देकर चले गए। भारतीय साहित्य में दुर्वासा ऋषि क्रुद्ध होने के लिए प्रसिद्ध हैं। थोड़े से कारण से भी वे क्रुद्ध हो जाते हैं। दुर्वासा को देखकर सखियाँ घबरा जाती हैं। दुर्वासा ऋषि अग्नि के सदृश जलाने वाले क्रोधी स्वभाव के हैं। वे किसी का अनुनय कठिनाई से ही स्वीकार करते थे। फिर भी प्रियंवदा उनसे अनुनय-विनय करती है तथा शकुन्तला के अपराध को क्षमा करने हेतु विनय करती है।

शब्दार्थ – अप्रियमेव = अशुभ, शून्यहृदया = अन्यमनस्क, अर्घोदकम् = अर्घ और जल, अग्रहस्तात् = हाथ से, प्रकृति वक्रः = स्वभाव से कुटिल, सानुक्रोशः = दया से युक्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पूजार्ह = पूजा+अर्ह्+अच्, अपराद्धा = अप+राध्+क्त+टाप्, वेगबलोत्फुल्लया = वेगस्य बलं तेन उत्फुल्ला (तत्पुरुष समास), अर्घोदकम् = अर्घश्च उदकं च तयोः समाहारः (द्वन्द्व समास), अग्रहस्तात् = अग्रश्चासौ हस्तश्च अग्रहस्तः (कर्मधारय समास), प्रकृतिवक्रः = प्रकृत्या वक्रः (तत्पुरुष समास), अनुक्रोशः = अनु+क्रुश्+घञ्।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः। (तदो ण मे वअणं अण्णहाभविदुं अरिहदि, किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो एव्व अन्तरिहिदो।)

अनसूया – शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति। (सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीयं त्ति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि।)

प्रियंवदा – सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः। (सहि, एहि। देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।)

(इति परिक्रामतः।)

प्रियंवदा – (विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्। (अणसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअं।)

अनसूया – प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। (पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा क्खु पकिदिपेलवा पिअसही।)

प्रियंवदा – को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति? (को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि।)

(इत्युभे निष्क्रान्ते)

विष्कम्भकः।

अनुवाद–

प्रियंवदा – तो मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता किन्तु पहचान का आभूषण दिखाने से शाप समाप्त हो जाएगा, यह कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गए।

अनसूया – अब आश्वासन रखा जा सकता है। प्रस्थान करते हुए उस राजर्षि ने अपने नाम से अंकित अंगूठी शकुन्तला की अंगुली में यह कहकर पहना दी थी कि इसे स्मरण रखना। उस अंगूठी के द्वारा इस शाप का उपाय शकुन्तला के अधीन रहेगा।

प्रियंवदा – सखि, आओ। देवता की पूजा के कार्य को निबटा लें। (यह कहकर घूमती हैं।)

प्रियंवदा – (देखकर) अनसूये, देखो। बांयें हाथ पर मुख को रखे हुए प्रिय सखी चित्रलिखित-सी प्रतीत होती है। पति के ध्यान में लगी हुई यह स्वयं को भी नहीं पहचानती, तो फिर अतिथि का तो कहना ही क्या?

अनसूया – प्रियंवदे, निश्चय ही यह वृत्तान्त हम दोनों के मुख में रहे। स्वभाव से कोमल प्रिय सखी की निश्चय से रक्षा करनी चाहिए।

प्रियंवदा – कौन व्यक्ति नवमालिका को गरम जल से सींचता है?

(यह कहकर दोनों निकल गयीं)

विष्कम्भक समाप्त।

व्याख्या–

दुर्वासा ऋषि शाप के प्रभाव को कम करने का उपाय बताते हैं कि कोई अभिज्ञान चिन्ह दिखाने से शकुन्तला को दुष्यन्त पहचानने में सक्षम होगा। दुर्वासा ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गए। कहने का आशय यह है कि वे योग-शक्ति से अदृश्य हो गए। अनसूया प्रियंवदा से यह वृत्तान्त गोपनीय रखने तथा शकुन्तला को न बताने के लिए कहती है इस पर प्रियंवदा कहती है कि दुर्वासा के शाप को बता कर मैं शकुन्तला को पीड़ित नहीं करूँगी जिस प्रकार नवमालिका को गरम जल से सींचने पर वह मुरझा जाती है, उसी प्रकार शकुन्तला को यदि इस शाप का वृत्तान्त विदित हो गया तो वह

भी अत्यधिक पीड़ित होगी। शकुन्तला नवमालिका के पुष्प के समान है तथा दुर्वासा का शाप गरम जल के समान जला देने वाला है।

शब्दार्थ – अन्तर्हितः = अन्तर्धान हो गए, संप्रस्थितेन = प्रस्थान करते समय, स्मरणीयमिति = स्मृतिचिन्ह के रूप में, पिनद्धम् = पहनाया, प्रकृतिपेलवा = स्वभाव से कोमल।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अन्तर्हितः = अन्तर्+धा+क्त, संप्रस्थितेन = सम्+प्र+स्था+क्त, पिनद्धम् = अपि+नह्+क्त, वामहस्तोपहितवदना = वामहस्ते उपहितं वदनं यस्याः सा (बहुब्रीहि समास)।

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः)

शिष्यः – वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त, प्रभातम्। तथाहि–

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना–
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।2।।

अन्वयः – एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरःसरः अर्कः आविष्कृतः, लोकः तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां, आत्मदशान्तरेषु नियम्यत इव।

शिष्य – (तदनन्तर सोकर उठे हुए कण्व के शिष्य का प्रवेश) प्रवास से लौटे हुए आदरणीय काश्यप ने मुझको समय देखने के लिए आदेश दिया है। प्रकाश निकल आया है। तो देखता हूँ कि रात कितनी बची है? (घूमकर और देखकर) अरे, प्रातःकाल हो गया है। क्योंकि –

एक ओर औषधियों का स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है, दूसरी ओर अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदय हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानो अपने दशा-विशेषों में नियन्त्रित हो रहा है।।2।।

व्याख्या– प्रस्तुत पद्य द्वारा कवि यह अभिव्यक्त करना चाहता है कि प्रातःकाल होने पर एक ओर तो चन्द्रमा अस्त हो रहा है और दूसरी ओर सूर्य उदय हो रहा है। ये दोनों घटनाएँ एक साथ हो रहीं हैं। जब इतने तेजस्वी पदार्थों में भी अवनति एवं उन्नति का स्वाभाविक चक्र चलता रहता है, तब संसार में विभिन्न व्यक्तियों में सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि की विभिन्न अवस्थाएँ आती रहती हैं। मनुष्य कभी गिरता है, कभी उठता है, कभी वह दुःख पाता है, कभी वह सुख पाता है, कभी उसकी अवनति होती है और कभी उन्नति। इस श्लोक से यह अर्थ भी अभिव्यंजित होता है कि शकुन्तला पर विपत्ति आयेगी, परन्तु कुछ समय बाद यह विपत्ति दूर होकर वह उन्नत अवस्था को भी प्राप्त करेगी।।2।।

शब्दार्थ – वेला = समय, उपवावृत्तेन = लौटे हुए, अस्तशिखरम् = अस्त हो रहा है, अर्क = सूर्य, लोक = संसार।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – ओषधि = ओष+धा+कि, अरुणपुरःसरः = अरुणः पुरः सरः यस्य सः (बहुव्रीहि समास), आत्मदशान्तरेषु = आत्मनः दशानाम् अन्तराणि (तत्पुरुष समास), शिष्यः = शास्+क्यप्, प्रभात = प्र+भा+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, तुल्ययोगिता, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'** अर्थात् जिस छन्द में एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण हों, वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है। ।।2।।

मूलपाठ –

अपि च –

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।।3।।

अन्वयः – शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीशोभा मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् इष्टप्रवासजनितानि अबलाजनस्य दुःखानि नूनम् अतिमात्रं सुदुःसहानि।

अनुवाद– और भी–

चन्द्रमा के छिप जाने पर वही कुमुदिनी स्मरणीय शोभावाली होने से मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। अबलाओं के प्रिय प्रवास से उत्पन्न हुए दुःख निश्चय से अत्यधिक दुःसह होते हैं।।3।।

व्याख्या– कवि प्रसिद्धि है कि चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद व सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं तथा इनके अस्त होने पर ये बन्द हो जाते हैं। इस श्लोक से दुष्यन्त और शकुन्तला से सम्बन्धित घटनाओं की भी अभिव्यंजना होती है। चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त के चले जाने पर और शकुन्तला का समाचार न लेने से उसकी अवस्था सोचनीय हो गयी है।

शब्दार्थ – अन्तर्हिते = छिपने पर, कुमुद्वती = कुमुदिनी, अबला = स्त्री, नूनम् = अवश्य ही, न नन्दयति = आह्लादित नहीं करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संस्मरणीयशोभा = संस्मरणीय शोभा यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अतिमात्रसुदुःसहानि = अतिमात्रं सुदुःसहानि (कर्मधारय समास), सुदुःसह = सु+दुः+सह्+खल्, संस्मरणीय = सम्+स्मृ+अनीयर्, इष्ट = इष्+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है। ।।3।।

मूलपाठ –

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनसूया – यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। (जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।)

शिष्यः – यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि।

(इति निष्क्रान्तः)

अनसूया – प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यवसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्। (पडिबुद्धा वि किं कविस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो दाणिं सकामो होदु, जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससोसावो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि। ता अदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं तस्स विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थंगदे अम्हेहिं किं करणिज्जं।)

अनुवाद–

(पर्दा हटाकर प्रविष्ट होकर)

अनसूया – सांसारिक विषय-भोगों से विमुख व्यक्ति को ये सब बातें यद्यपि विदित नहीं हैं तथापि उस राजा ने शकुन्तला के प्रति अनार्य आचरण किया है।

शिष्य – तो हवन करने का समय उपस्थित हो गया है। यह बात गुरु से निवेदन करूँ। (यह कहकर निकल जाता है।)

अनसूया – जागकर भी क्या करूँगी? अभ्यस्त दैनिक कार्यों में भी मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे हैं। कामदेव की इच्छा पूर्ण हो। जिसने असत्य प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति के प्रति शुद्धहृदया शकुन्तला का प्रेम कराया है अथवा दुर्वासा का शाप ही यह विकार उत्पन्न कर रहा है। नहीं तो कैसे वह राजर्षि इस प्रकार की मीठी बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी न भेजता। अतः यहाँ से वह पहचान की अँगूठी उसके पास भेजते हैं। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों में से किससे प्रार्थना करें? हमारी सखी पर दोष आयेगा। इसलिए मैं निश्चय करने पर भी प्रवास से लौटे हुए पिता काश्यप से यह निवेदन करने में समर्थ नहीं हो रही हूँ कि शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती है। इस प्रकार की अवस्था होने पर हमें क्या करना चाहिए?

शब्दार्थ – गुरवे = गुरु से, विदितं = जानना, लेखमात्रमपि = पत्रमात्र भी, विसृजति = भेजना, दु:खशीले = दु:ख सहन करने वाले, परिणीताम् = विवाहिता, आपन्नसत्त्वाम् = गर्भिणी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपटीक्षेपः = पट्याः क्षेपः पटीक्षेपः, न पटीक्षेपः इति अपटीक्षेपः (नञ् तत्पुरुष समास), प्रतिबुद्धा = प्रति+बुध्+क्त+टाप्, आपन्नसत्त्वाम् = सत्त्वम् आपन्ना (तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

(प्रविश्य)

प्रियंवदा – (सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। (सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं।)

अनसूया – सखि, कथमेतत्? (सहि, कहं एदं।)

प्रियंवदा – शृणु। इदानीं सुखशयितप्रच्छिका शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि। (सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि।)

अनसूया – ततस्ततः। (तदो तदो।)

प्रियंवदा – तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति। (दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं। दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।)

अनसूया – अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः? (अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।)

प्रियंवदा – अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या। (अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईआ वाणिआए।)

अनुवाद– (प्रवेश करके)

प्रियंवदा – (प्रसन्नता से) सखि, शकुन्तला की विदाई के समय किये जाने वाले मंगल कार्यों के लिए शीघ्रता करो।

अनसूया – सखि, यह कैसे हुआ?

प्रियंवदा – सुनो। तुम सुखपूर्वक सोई थी, यह पूछने के लिए मैं अभी शकुन्तला के पास गयी थी। तब लज्जा से झुके हुए मुख वाली इस शकुन्तला का आलिंगन करके पिता काश्यप ने अभिनन्दन किया। धुएँ से व्याकुल दृष्टि वाले यजमान की आहुति भाग्य से अग्नि में ही गिरी है। पुत्रि! शिष्य को दी गयी विद्या के समान तुम अशोचनीय हो गयी हो। ऋषियों से रक्षा की गयी तुमको मैं आज पति के पास विदा करता हूँ।

अनसूया – और तात काश्यप को यह सूचना किसने दी?

प्रियंवदा – यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए उनके शरीर रहित छन्दोमय वाणी ने।

शब्दार्थ – प्रस्थानकौतुक = प्रस्थान के समय किए जाने वाले मांगलिक कार्य, लज्जावनतमुखीम् = लज्जा से नीचे मुँह की हुई, दिष्ट्या = सौभाग्य से, धूमाकुलेन = धुएँ से व्याकुल, पावक = अग्नि, अद्यैव = आज ही।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सुखशयितं = सुखेन सहितम् (सुप्सुपा समास), लज्जावनतमुखिम् = लज्जया अवनतमुखीम् (तत्पुरुष समास), धूमाकुलितदृष्टिः = धूमेन आकुलिता दृष्टिः यस्य तस्य (बहुव्रीहि समास)।

मूलपाठ –

प्रियंवदा– **(संस्कृतमाश्रित्य)**

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।।4।।

अन्वयः – ब्रह्मन् दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

अनुवाद– (संस्कृत का आश्रय लेकर)

हे ब्रह्मन्! अपनी पुत्री को संसार का कल्याण करने के लिए दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को धारण करने वाली, अतः अग्नि को गर्भ में धारण करने वाली शमी के समान समझो।।4।।

व्याख्या–

कन्या को पतिगृह के लिए विदा के समय किए जाने वाले अनेक मंगलकारी कार्यों को प्रस्थानकौतुक कहते हैं। कण्व कहते हैं कि जैसे यज्ञ की अग्नि से धुआँ उठने के कारण यजमान की आँखों से दिखाई नहीं देता, परन्तु भाग्य से उसके द्वारा दी जाती हुई आहुति अग्नि में ही गिरती है, उसी प्रकार इस विवाह रूपी यज्ञ के यजमान कण्व के यज्ञ की आहुति रूप शकुन्तला उसके योग्य वर दुष्यन्त को, जो कि अग्नि का रूप है, प्राप्त हुई है तथा जैसे उत्तम शिष्य को दी गयी विद्या कल्याणकारी होती है परन्तु कुत्सित शिष्य को देने पर उसका शोचनीय परिणाम होता है इसी प्रकार योग्य वर को प्राप्त करके शकुन्तला भी अब शोक के योग्य नहीं है। कण्व ऋषि महान् तपस्वी थे। यज्ञशाला में जब उन्होंने प्रवेश किया तो आकाशवाणी ने उनको शकुन्तला की अवस्था की सूचना दी।

शब्दार्थ – तेजः = तेज या वीर्य, भूतये = पृथ्वी के, भुवः = कल्याण, अवेहि = जानो, शमीमिव = शमी के वृक्ष के समान।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवेहि = लोट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन, अवेहि = अव+एहि (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द जिसका लक्षण इस प्रकार है–

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

मूलपाठ –

अनसूया – (प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे। किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयते इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि। (सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं परितोसं अणुहोमि।)

प्रियंवदा – सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु। (सहि, वअं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु।)

अनसूया – तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसन्निहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि। (तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालान्तरक्खमा णिक्खित्तमए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसण्णिहिदं करेहि। जाव अहंपि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआणि त्ति मंगलसमालंणणि विरएमि।)

प्रियंवदा – तथा क्रियताम्। (तह करीअदु।)

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति)

अनुवाद–

अनसूया– (प्रियंवदा का आलिंगन करके) सखि, मेरे लिए यह प्रिय बात है किन्तु आज ही शकुन्तला ले जाई जा रही है, अतः उत्कण्ठा से युक्त सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ।

प्रियंवदा– सखि, हम दोनों तो अपने को बहला लेंगे, वह बेचारी सुखी होवे।

अनसूया– तो इस आम के वृक्ष की शाखा पर लटके हुए नारियल के सम्पुट में मैंने इस निमित्त से ही दीर्घकाल तक न मुरझाने वाली मौलसिरी की माला रख दी थी। तो इसको हाथ में ले लो। जब तक मैं भी इसके लिए मृगरोचना को, तीर्थों की मिट्टी को और दूब के किसलयों को और इस प्रकार मंगल-सामग्री को तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा– वैसा ही करो।

(अनसूया निकल गई। प्रियंवदा फूल लेने का अभिनय करती है।)

शब्दार्थ – तपस्विनी = बेचारी, निर्वृता = सुखी हो, चूतशाखामवलम्बिते = आम की शाखा में लटके हुए, नारिकेलसमुद्गक = नारियल के डिब्बे में, गोरोचना = गोरोचन, समालम्भनानि = सामग्री।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्कण्ठाम् = उत्कण्ठया दुःखेन साधारणं समानम् (तत्पुरुष समास), समुद्गक = सम+उद्+गम्+ड।

मूलपाठ –

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यन्तां शाङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय।

प्रियंवदा– (कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते। (अणसूए, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।)

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

अनसूया – सखि, एहि। गच्छावः। (सहि, एहि। गच्छम्ह।)

(इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा – (विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्। (एसा सुज्जोदए एव सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवअणिकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं।)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

तापसीनामन्यतमा – (शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व। (जादे, भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि।)

द्वितीया – वत्से, वीरप्रसविनी भव। (वच्छे, वीरप्पसविणी होहि।)

तृतीया – वत्से, भर्तुर्बहुमता भव। (वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि।) **(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः।)**

सख्यौ – (उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु। (सहि, सुहमज्जणं दे होदु।)

शकुन्तला – स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्। (साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह।)

उभे – (मङ्गलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः। (हला, सज्जा होहि। जाव दे मङ्गलसमालम्भणं विरएम।)

शकुन्तला – इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति। (इदं पि बहु मन्तव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि।) **(इति बाष्पं विसृजति।)**

उभे – सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्। (सहि, उइणं दे ण मङ्गलकाले रोइदुं।)

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।)

प्रियंवदा – आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। (आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि।)

(प्रविश्योपायनहस्तावृषिकुमारकौ)

उभौ – इदमलङ्करणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः।)

गौतमी – वत्स नारद, कुत एतत्? (वच्छ णारअ, कुदो एदं।)

प्रथमः – तातकाश्यपप्रभावात्।

गौतमी – किं मानसी सिद्धिः? (किं माणसी सिद्धिः)

अनुवाद–

(नेपथ्य में)

गौतमी, शकुन्तला को ले जाने के लिए शाङ्गरव आदि को आदेश दो।

प्रियंवदा – (कान देकर) अनसूये, शीघ्रता करो। निश्चय से ये हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि पुकारे जा रहे हैं। (मांगलिक वस्तुएँ हाथ में लिए प्रविष्ट होकर)

अनसूया – सखि, आओ, चलें। (दोनों घूमती हैं।)

प्रियंवदा – (देखकर) सूर्योदय होते ही यह शकुन्तला चोटी से स्नान करके, नीवारों को हाथों में लिए हुए स्वस्तिवाचन पढ़ने वाली तपस्विनियों से अभिनन्दन की जाती हुई बैठी है। इसके समीप चलते हैं। (तदनन्तर जैसा कहा गया था, उस रूप में बैठी हुई शकुन्तला का प्रवेश)

तपस्विनियों में से एक – (शकुन्तला के प्रति) पुत्री, पति से बहुत अधिक आदर सूचक महादेवी पद को प्राप्त करो।

दूसरी – पुत्री, वीर पुत्र को उत्पन्न करने वाली बनो।

तीसरी – पुत्री, पति की बहुत अधिक आदरणीय और प्रिय बनो।

(इस प्रकार आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर सब निकल गयी)

सखियाँ – सखि, तुम्हारा स्नान सुख देने वाला हो।

शकुन्तला– मेरी सखियों का स्वागत है। इधर बैठो।

दोनों – (मंगल पात्रों को लेकर) हला, तैयार हो जाओ। हम तुम्हारा मंगलकारी प्रसाधन करती हैं।

शकुन्तला – मुझको इसको भी बहुत समझना चाहिए। अब सखियों द्वारा प्रसाधन कराना मेरे लिए दुर्लभ हो जाएगा। (रोती है।)

दोनों – सखि, इस मंगल के समय में रोना उचित नहीं है।

(आँसुओं को पोंछकर अलंकृत करने का नाट्य करती है।)

प्रियंवदा – आभूषणों के योग्य यह सौन्दर्य आश्रम में सुलभ प्रसाधनों द्वारा बिगाड़ा जा रहा है। (आभूषणों को हाथ में लिए हुए दो ऋषिकुमारों का प्रवेश)

दो ऋषिकुमार – ये अलंकार हैं। इन आदरणीया को अलंकृत करो।

(सब देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं)

गौतमी – पुत्र नारद, ये कहाँ से आये?

पहला – तात काश्यप के प्रभाव से।

गौतमी – क्या ये ऋषि के मानसिक संकल्प के फल है?

व्याख्या–

तीन तपस्विनियों ने शकुन्तला को आशीर्वाद दिया। उनके आशीर्वाद से स्पष्ट है कि विवाह होने पर नारी के लिए पति द्वारा आदर और प्रेम प्राप्त करना, श्रेष्ठ गुणों से युक्त सन्तान प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों से बहुत प्रेम करती है। दोनों सखियाँ उसका शृंगार करती हैं। पति के घर पहुँचकर सखियों से उसका वियोग हो जाएगा। यह विचार करके शकुन्तला की आँखों में आँसू आ जाते हैं। विदा के समय कन्या की आँखों में आँसू आना स्वभाविक है तथापि कवि जो यह कह रहा है कि मंगल समय में रोना उचित नहीं है इससे यह अभिव्यंजित होता है कि भविष्य में अमंगल होने की आशंका है। यह कथन भविष्य में होने वाले वियोग की सूचना देता है। ऋषिकुमार आभूषणों को लेकर प्रवेश करते हैं जिसको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते हैं

शब्दार्थ – शिखामज्जिता = सिर धोकर स्नान की हुई, प्रतीष्ट = गृहीत, वीरप्रसविनी = वीर पुत्र को जन्म देने वाली, विप्रकार्यते = बिगाड़ा जा रहा है, उपयान = भेंट, मङ्गकाले = मंगल समय में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शब्दाय्यन्ते = शब्दाय+णिच्+लट्, वीरप्रसविनी = वीर+प्र+सू+इनि, आभरण = आ+भृ+ल्युट्।

मूलपाठ –

द्वितीयः – न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीम्–

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै–
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।5।।

अन्वयः – न केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागगसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

अनुवाद–

द्वितीय– नहीं, सुनिए। पूजनीय ने हमें आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल चुनकर लाओ। तब–

हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य लाक्षारस प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए, सुन्दर किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वनदेवता के करतलों से आभूषण दिए।।5।।

व्याख्या–

आश्रम में दुर्लभ अलंकारों को देखकर सबको आश्चर्य होता है कि आभूषण कहाँ से प्राप्त हुए। ये आभूषण काश्यप के प्रभाव से प्राप्त हुए थे। कण्व का तपोबल इतना अधिक था कि वे अपने मन के संकल्प से ही प्रत्येक वस्तु को प्राप्त कर लेते थे इसीलिए उन्होंने शिष्यों को आदेश दिया कि वनस्पतियों से कुसुम ले आओ। जहाँ शकुन्तला वनस्पतियों के प्रति अधिक स्नेहशील थी, वहाँ वृक्ष भी उससे अत्यधिक स्नेह करते थे। उसकी विदाई के समय उन्होंने सभी प्रकार की सामग्री उसको भेंट की।

शब्दार्थ – क्षौमम् = रेशमी वस्त्र, इन्दुपाण्डु = चन्द्रमा के समान श्वेत, आविष्कृतम् = प्रकट किया, निष्ठ्यूतः = निकाला, लाक्षारसः = महावर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – माङ्गल्यम् = माङ्गल+यत्, चरणोपरागसुभगः = चरणयोः उपरागे सुभगः (तत्पुरुष समास), आपर्वभागम् = पर्वभागं यावत् आपर्वभागम् (अव्ययीभाव समास), आपर्वभागोत्थितैः = आपर्वभागम् उत्थितैः (सुप्सुपा समास)।

प्रस्तुत श्लोक में वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है– **'सूर्याश्वैर्मसजस्ताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'** अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, दो तगण और एक गुरु वर्ण हो, बारहवें और सातवें वर्ण पर यति हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः। (हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि।) **(शकुन्तला व्रीडां रूपयति।)**

प्रथमः – गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

द्वितीयः – तथा। (इति निष्क्रान्तौ)

सख्यौ – अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः। (अए, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु द आहरणविणिओअं करेम्ह।)

शकुन्तला – जाने वां नैपुणम्। (जाणे वो णेउणं।)

(उभे नाट्येनालंकुरुतः)

अनुवाद–

प्रियंवदा – (शकुन्तला को देखकर) सखी, इस अनुग्रह से सूचित होता है कि तुम पति के घर में राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी। (शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है)

पहला – गौतम, आओ, आओ। स्नान करके निकले हुए काश्यप को वनस्पतियों की सेवा बता दें।

दूसरा – ठीक है। (दोनों का प्रस्थान)

दोनों सखियाँ – ओह, हम लोगों ने कभी आभूषण का उपयोग नहीं किया है चित्रकारी के कार्य से परिचित होने से हम लोग तेरे अंगों में आभूषण पहनाती हैं।

शकुन्तला – मैं तुम्हारी निपुणता जानती हूँ।

(दोनों शकुन्तला को आभूषण पहनाने का नाट्य करती हैं।)

व्याख्या–

प्रियंवदा के द्वारा कहे गए कथन कि सम्राट पति को प्राप्त करके व महादेवी का पद प्राप्त करके राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी, पर शकुन्तला लज्जा करने लगती है, जो कि स्वाभाविक है। तापस कन्याओं ने कभी आभूषण तो पहने नहीं थे, अतः वे नहीं जानती थीं कि आभूषण कैसे पहने जाते हैं परन्तु वे चित्र की सहायता से आभूषण पहनाती हैं।

शब्दार्थ – अभ्युपत्त्या = वृक्षों के अनुग्रह द्वारा, अभिषेकोत्तीर्णाय = स्नान करके आये हुए, नैपुणम् = निपुणता को, वनस्पतिसेवाम् = वनस्पतियों की सेवा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभ्युपपत्ति = अभि+उप+पद्+क्तिन्, अभिषेक = अभि+सिच्+घञ्, उत्तीर्ण = उद्+तॄ+क्त, नैपुणम् = निपुण+अण्।

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः)

काश्यपः –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।6।।

(इति परिक्रामति)

अन्वयः – अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयं उत्कण्ठया संस्पृष्टम्, कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यं, गृहिणः नवैः तनयाविश्लेषदुःखः कथं नु पीड्यन्ते।

अनुवाद –

(तदनन्तर स्नान करके आए हुए काश्यप का प्रवेश)

काश्यप– आज शकुन्तला विदा होगी, इसलिए मेरा हृदय दुःख से भरा है। आँसुओं के बहने को रोकने से गला भर आया है। दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गई है। जंगल में रहने वाले मुझको प्रेम के कारण इस प्रकार का दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग से कितने अधिक दुःखित होते होंगे?।।6।।

(चारों ओर घूमते हैं।)

व्याख्या–

कन्या को पति-गृह के लिए विदा करते समय पिता के हृदय में जो पीड़ा होती है, उसका कालिदास ने सुन्दर चित्रण किया है। शकुन्तला अभी पति के घर के लिए विदा नहीं हुई है, तभी वियोग की कल्पनामात्र से इतना कष्ट है, तो जब वस्तुतः विदा हो जायेगी उस समय का कष्ट तो और भी व्याकुलता को उत्पन्न करेगा।

शब्दार्थ – संस्पृष्टम् = व्याप्त है, उत्कण्ठया = दुःख से, कलुष = मैला, दर्शनम् = दर्शनशक्ति, अरण्य = वन, गृहिणः = गृहस्थ, तनया = पुत्री।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संस्पृष्टम् = सम्+स्पृश्+क्त, स्तम्भितबाष्पवृतिः = स्तम्भिता बाष्पवृत्तिः (कर्मधारय समास), अरण्यौकसः = अरण्यम् ओकः गृहं यस्य (बहुव्रीहि समास)। प्रकृत श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

सख्यौ – हला शकुन्तले, अवसितमण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (हला सउन्दले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं।) **(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते)**

गौतमी – जाते, एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व। (जादे, एसो दे आणन्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स।)

शकुन्तला – (सव्रीडम्) तात, वन्दे। (ताद, वन्दामि।)

अनुवाद –

दोनों सखियाँ – सखी शकुन्तला, तुम्हारा शृंगार पूरा हो गया है। अब रेशमी वस्त्रों को पहन लो। (शकुन्तला उठकर पहनती है)

गौतमी – पुत्री, आनन्द के आँसूओं को बहाने वाली आँखों से तुम्हारा मानो आलिंगन करते हुए ये तुम्हारे पिता उपस्थित हुए हैं। इनके प्रति शिष्टाचार का पालन करो।

शकुन्तला – (लज्जा से) पिता, मैं प्रणाम करती हूँ।

शब्दार्थ – अवसितमण्डना = तुम्हारा शृंगार पूर्ण हो गया है, क्षौमम् = रेशमी, परिधत्स्व = पहन लो, चक्षुष = नेत्रों से, आचार = शिष्टाचार।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवसितमण्डना = अवसितं समाप्तं मण्डनं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अवसित = अव+सो+क्त, आनन्दपरिवाहिणा = आनन्द+परि+वाहि+णिनि+तृतीया।

मूलपाठ –

काश्यपः – वत्से, –

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि।।7।।

गौतमी – भगवन्, वरः खल्वेषः। नाशीः। (भअवं, वरो क्खु एसो। ण आसिसो।)

काश्यपः – वत्से, इतः सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

अन्वयः – शर्मिष्ठा ययातेः इव भर्तुः र्बहुमता भव। सा पूरुम इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।

अनुवाद –

काश्यप – पुत्री,

जिस प्रकार शर्मिष्ठा ययाति को बहुत अधिक प्रिय और आदरणीय थी, उसी प्रकार तुम भी पति की बहुत अधिक प्रिय और आदरणीय बनो। जिस प्रकार उस शर्मिष्ठा ने पुरु नामक सम्राट् पुत्र को प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम भी सम्राट् पुत्र को प्राप्त करो।।7।।

गौतमी – भगवन्, यह तो निश्चय से वर है, आशीर्वाद नहीं।

काश्यप – पुत्री, इस ओर से तत्काल आहुति दी गयी अग्नियों की परिक्रमा करो। (सब घूमते हैं।)

शब्दार्थ – भर्तुः = पति की, वत्से = पुत्री, बहुमता = अत्यधिक प्रिय, सुतम् = पुत्र, अवाप्नुहि = प्राप्त करो, प्रदक्षिणीकुरुष्व = प्रदक्षिणा करो।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काश्यपः – (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते।) वत्से,

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै–
र्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।।8।।

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शाङ्र्गरवमिश्राः?

अन्वयः – अमी समिद्वन्तः वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः वैतानाः वह्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः त्वां पावयन्तु।

अनुवाद–

काश्यप– (ऋग्वेद के छन्द से आशीर्वाद देते हैं।)

वेदी के चारों ओर स्थान को बनाने वाली, समिधाओं से युक्त प्रान्त भागों में बिछाये गये दर्भों से युक्त, हवियों की सुगन्धियों से पापों-कष्टों का विनाश करने वाली ये यज्ञीय अग्नियाँ तुमको पवित्र करें।।8।।

अब प्रस्थान करो। (दृष्टि डालकर) वे शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं?

शब्दार्थ – क्लृप्तधिष्ण्याः = जिनको यथास्थान स्थापित किया गया है, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः = जिनके आस-पास कुशा बिछी हुई है, वैतानाः = यज्ञ से सम्बन्धित, वितान = यक्ष, अपघ्नन्तः = नष्ट करती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – क्लृप्तधिष्ण्याः = क्लृप्तानि घिष्ण्यानि येषां ते (बहुव्रीहि समास), प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः = प्रान्तेषु संस्तीर्णाः दर्भाः येषां ते (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार है। यहाँ त्रिष्टुप् छन्द है। यह वैदिक छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में ग्यारह वर्ण होते हैं।

मूलपाठ – (प्रविश्य)

शिष्यः – भगवन्, इमे स्मः।

काश्यपः – भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

शाङ्र्गरवः – इत इतो भवती।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

अनुवाद– (प्रवेश करके)

शिष्य – भगवन्, ये हैं।

काश्यप– अपनी बहन को मार्ग बताओ।

शाङ्र्गरव– आप इधर से आइये। (सब घूमते हैं)

मूलपाठ –

काश्यपः – भो भोः सन्निहितास्तपोवनतरवः–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।9।।

अन्वयः – युष्मासु अपीतेषु या प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति। भवतां स्नेहेन या प्रियमण्डना अपि पल्लवम् ना आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्या उत्सवः भवति। सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति, सर्वैः अनुज्ञायताम्।

अनुवाद–

काश्यप – हे समीप स्थित आश्रम के वृक्षों, जो शकुन्तला तुम्हारे जल न पीने पर स्वयं पहले जल पीने का उद्योग नहीं करती, अलंकार प्रिय होने पर भी स्नेह के कारण आपके पल्लव को नहीं तोड़ती, आपके प्रथम पुष्पों की उत्पत्ति के समय जो उत्सव मनाया करती है, वह यह शकुन्तला पति के घर जा रही है, आप सब अनुमति दीजिए।।9।।

व्याख्या–

'पातुं न प्रथमं .....' नामक श्लोक में शकुन्तला का आश्रम के वृक्षों के प्रति वात्सल्य भाव व्यंजित किया गया है। वह शकुन्तला स्वयं जल पीने से पूर्व वृक्षों को सींचती थी, उसके पल्लवों को कभी नहीं तोड़ती थी और उनमें जब पहली बार फूल खिलते थे तो उत्सव मनाया करती थी। वृक्षों को इस प्रकार स्नेह करने वाली शकुन्तला अब आश्रम से जा रही है, तो उनसे विदा माँगना उचित ही है।

शब्दार्थ – प्रियमण्डना = जिसको अलंकार पसन्द हैं, भवताम् = आप लोगों के प्रति, स्नेहेन = प्रेम के कारण, कुसुमप्रसूतिसमये = पुष्पों के निकलने के समय, याति= जा रही है, अनुज्ञायताम् = स्वीकृति से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रियमण्डना = प्रियं मण्डनं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), कुसमप्रसूतिसमये = कुसुमानां प्रसूतेः समये (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

(कोकिलरवं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।।10।।

अन्वयः – इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरुतम् एभिः ईदृशम् प्रतिवचनीकृतम्।

अनुवाद –

(कोयल की ध्वनि की सूचना सुनकर)

वनवास के बन्धु इन वृक्षों ने शकुन्तला को जाने की अनुमति दे दी क्योंकि इन्होंने इस प्रकार के अव्यक्त मधुर कोकिल के कूजन के रूप में अपना प्रत्युत्तर दे दिया है।।10।।

शब्दार्थ – अनुमतगमना = जाने की अनुमति दे दी है, वनवासबन्धुभिः = वन के साथ, परभृत = कोयल, विरुतम् = शब्द।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुमत = अनु+मन्+क्त, वनवासबन्धुभिः = वनवासस्य बन्धुभिः (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में परिणाम अलंकार है। यहाँ अपरवक्त्र छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है – '**अयुजि ननरला गुरुः समे, तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ**' अर्थात् अपरवक्त्र छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में 11 वर्ण होते हैं जिसमें 2 नगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 12 वर्ण होते हैं जिनमें एक नगण, दो जगण और एक रगण होता है।

मूलपाठ –

(आकाशे)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि–
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।11।।

अन्वयः – कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापः, अस्याः पन्थाः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात्।

अनुवाद–

(आकाश)

इस शकुन्तला का मार्ग जो कि बीच-बीच में कमलिनियों से हरे-भरे जलाशयों से रमणीय है, जिसमें सूर्य की किरणों की धूप को छायादार वृक्षों से रोक दिया गया है और जो कमलों के पराग के समान कोमल धूलि वाला है, शान्त एवं अनुकूल पवन वाला और कल्याणकारी होवे।।11।।

शब्दार्थ – कमलिनीहरितैः = कमलिनियों से हरे-भरे तालाब हों, छायाद्रुमैः = छाया वाले वृक्षों से, शिवः = मंगलकारी, पन्थाः = मार्ग।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नियमितार्कमयूखतापः = नियमितः अर्कस्य मयूखानां तापः यस्मिन् स (बहुव्रीहि समास), शान्तानुकूलपवनः = शान्तः अनुकूलः पवनः यस्मिन् स (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में तुल्ययोगिता, परिकर, अन्योन्य और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

बोध प्रश्न

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i) कण्व ऋषि ..... तीर्थ गए थे।

ii) ययाति की पत्नी ..... थी।

iii) क्षमायाचना के लिए दुर्वासा के पास ..... जाती है।

iv) शाकुन्तलम् में शकुन्तला को ..... ने शाप दिया।

2) निम्नलिखित में सत्य तथा असत्य कथन का चयन कीजिए –

i) दुष्यन्त तथा शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विधि से हुआ था –

ii) कण्व को शकुन्तला के विवाह की सूचना अनसूया ने दी –

iii) अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला की सखियाँ थीं –

iv) शाप की घटना 'शाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में है –

v) शकुन्तला के लिए आभूषण बाजार से आते हैं –

3) निम्नलिखित विकल्पों में सही विकल्प पर सही का निशान लगाइए –

i) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'प्रक्रतिवक्रः सः' किसके लिए प्रयुक्त किया गया है–

(क) कण्व के लिए (ख) दुष्यन्त के लिए

(ग) दुर्वासा के लिए (घ) मारीच के लिए

ii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'अग्निगर्भा शमीमिव' कौन है–

(क) गौतमी (ख) कण्व

(ग) शकुन्तला (घ) प्रियंवदा

iii)अरण्यौकसः पद का अर्थ है–

(क) वनवासी (ख) गृहस्थ

(ग) ब्रह्मचारी (घ) तपस्वी

iv)तपस्वी होकर भी लौकिक व्यवहारों के ज्ञाता हैं–

(क) विश्वामित्र (ख) दुर्वासा

(ग) शाङ्र्गरव (घ) कण्व

v) 'ओषधीनां पति' है–

(क) सूर्य (ख) चन्द्रमा

(ग)यम (घ) मंगल

अभ्यास प्रश्न

1) 'विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

2) 'यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयम्' श्लोक का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।

14.3 सारांश

चौथे अंक के विष्कम्भक में पुष्पों का चयन करती अनसूया एवं प्रियंवदा के वार्तालाप से विदित होता है कि दुष्यन्त का शकुन्तला से गान्धर्व विधि से विवाह हो गया था। वह शकुन्तला को शीघ्र बुलाने का आश्वासन देकर हस्तिनापुर चला गया। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है। इसी समय दुर्वासा ऋषि का स्वर सुनाई देता है परन्तु शकुन्तला उसको सुन नहीं पाती। तब दुर्वासा ऋषि उसको इस प्रकार शाप देकर चले जाते हैं– 'जिसका स्मरण करती हुई तू मुझ तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही, वह तुझको भूल जाएगा और स्मरण दिलाने पर भी स्मरण नहीं करेगा।'

अनसूया के कहने पर प्रियंवदा ऋषि को मनाने जाती है। किसी पहचान का आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। प्रियंवदा और अनसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती हैं, न अन्य किसी को। वे समझती हैं कि राजा की अंगूठी शकुन्तला के पास है अतः राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा। यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त होता है।

प्रवास से लौट कर आये कण्व को आकाशवाणी द्वारा विदित होता है कि शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती है। वे शकुन्तला को पतिगृह भेजने का प्रबन्ध करते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है और उसे बुलाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता। शकुन्तला की विदा की तैयारियाँ होती हैं। इस अवसर पर वन्य-वनस्पतियाँ अपने उपहार शकुन्तला के लिए अर्पित करती हैं। वनवृक्षों द्वारा आभूषण और रेशमादि वस्त्र प्राप्त होते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वन मृगों आदि से विदा लेती हैं

14.4 शब्दावली

गुणविरोधिनः	–	गुणों से विरोध करने वाले
अनायासेन	–	बिना किसी प्रयास के
अप्रियमेव	–	अशुभ
पिनद्धम्	–	पहनाया
वेला	–	समय
अबला	–	स्त्री
विसृजति	–	भेजना
समालम्भनानि	–	सामग्री
लाक्षारसः	–	महावर
तनया	–	पुत्री
अवाप्नुहि	–	प्राप्त करो

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार डॉ. कृष्ण कुमार, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद।

4) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली।

5) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार शिवराज, पेंविन बुक्स लिमिटेड।

6) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार आचार्य धुरंधर शास्त्री, भारतीय विद्या संस्थान।

7) कालिदास ग्रन्थावली, व्याख्याकार रामतेज शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, आरियंटल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) सोमतीर्थ (ii) शर्मिष्ठा (iii) प्रियंवदा (iv) दुर्वासा ऋषि
2. (i) सत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (iv) सत्य (v) असत्य
3. (i) (ग) दुर्वासा के लिए (ii) (ग) शकुन्तला (iii) (क) वनवासी (iv) (घ) कण्व (v) (ख) चन्द्रमा

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 15 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क)–भाग 2

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) – श्लोक 12-22

15.3 सारांश

15.4 शब्दावली

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन से परिचित होंगे।
- कण्व और शकुन्तला के पारस्परिक प्रेम से परिचित होंगे।
- शकुन्तला की विदायी के दृश्यों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- इकाई में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

15.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! आपके पाठ्यक्रम में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का चतुर्थ अंक रखा गया है। 14वीं इकाई में आपने इस अंक के कुछ संवादों तथा श्लोकों का अध्ययन किया। आप जानते हैं कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हुआ था। विवाह के पश्चात् दुष्यन्त हस्तिनापुर चले जाते हैं। हस्तिनापुर पहुँचकर वे शकुन्तला को ले जाने के लिए किसी को नहीं भेजते हैं अतः शकुन्तला की सखियाँ चिन्तित होती हैं। शकुन्तला भी पति के ध्यान में मग्न रहती है और दुर्वासा ऋषि का आतिथ्य नहीं कर पाती है। दुर्वासा ऋषि शकुन्तला को शाप देकर लौटने लगते हैं तब प्रियंवदा उनको प्रसन्न कर शाप से मुक्ति का उपाय पूछती है। वह शाप मुक्ति का उपाय बताकर अन्तर्धान हो जाते हैं। तभी अशरीरधारिणी छन्दोमयी वाणी से कण्व को शकुन्तला के विवाह की सूचना मिलती है। कण्व शकुन्तला को पतिगृह भेजने की तैयारी करते हैं। शकुन्तला की विदायी के अवसर पर सभी दुःखी हैं। इस इकाई में आप श्लोक 12 से लेकर 22 तक के संवादों और श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

15.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क)– श्लोक 12-22

मूलपाठ –

गौतमी – जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनाऽसि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः। (जादे, ण्णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीअं।)

शकुन्तला – (सप्रणामं परिक्रम्य। जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तते। (हला पिअंवदे, अज्जउणदंसणुस्सुअए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टन्ति।)

प्रियंवदा – न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते। (ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्य वि दाव समवत्था दीसइ।)

अनुवाद–

गौतमी – पुत्री, बन्धु बान्धव के समान स्नेह रखने वाले, तपोवन में रहने वाले देवताओं के द्वारा, तुम्हें जाने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है (इसलिये) इन देवताओं को प्रणाम करो।

शकुन्तला – (घूमते हुए प्रणाम करती है, पुनः हाथ से मुख छिपाकर जिससे प्रियंवदा मात्र को ही सुनाई दे) सखि प्रियंवदा, आर्यपुत्र (दुष्यन्त) के दर्शन के लिये लालायित होते हुए भी (इस) आश्रम स्थान को छोड़ने से (होने वाले) दुःख के कारण मेरे दोनों पैर आगे नहीं बढ रहे हैं।

प्रियंवदा – केवल तुम ही इस तपोवन के विरह से दुःखी नहीं हो, (अपितु) तुम्हारे विदाई के कारण तपोवन की भी तुम्हारे जैसी स्थिति दिखाई दे रही है अर्थात् तुम्हारे विदाई से यह वन भी अत्यन्त दुःखी है।

शब्दार्थ – ज्ञातिजनस्निग्धाभिः = सम्बन्धी लोगों के समान प्रेम करने वाली, अनुज्ञातगमना = जाने की अनुमति, कातरः = दुःखित, समवस्था = समान अवस्था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – स्निग्ध =सिन्ह्+क्त, अनुज्ञातगमना = अनुज्ञातं गमनं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), तपोवनविरहकातरा = तपोवनस्य विरहेण कातरा (तत्पुरुष समास), उपस्थितवियोगः = उपस्थितः वियोगः यस्य (बहुव्रीहि समास)।

मूलपाठ –

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्राः मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।12।।

(उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।

ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ।।)

अन्वयः – मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः मयूराः परित्यक्तनर्तनाः लताः अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में प्रियंवदा के द्वारा शकुन्तला की विदाई के समय तपोवन के समस्त जीवों, वृक्षों, लताओं आदि के दुःखी होने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – हिरणियों ने कुश के ग्रास को उगल (गिरा) दिया है तथा मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है लतायें पीले पत्तों का परित्याग करके मानो अश्रुपात कर रही हैं।

व्याख्या – यह उक्ति प्रियवंदा कहती है शकुन्तला की विदाई के अवसर पर शकुन्तला तुम स्वयं ही दुःखी नहीं हो अपितु तुम्हारे स्नेह के कारण आश्रम के मृगियों ने कुश खाना छोड़ दिया है दुःखी होकर मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है। लतायें अपने पीले पत्ते गिरा कर मानो आँसू बहा रही हों।

शब्दार्थ – उद्गलित् = उगल दिया है, दर्भ = कुश, परित्यक्त = छोड़ दिया है, मयूराः = मयूरों ने, अपसृत = गिरा रही हैं, पाण्डुपत्रा = पीले पत्ते, लताः = लतायें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उद्गलितदर्भकवलाः = उद्गलितः दर्भकवलः याभिः ताः (बहुव्रीहि समास), परित्यक्तनर्तना = परित्यक्तं नर्तनं यैः ते, (बहुव्रीहि समास), अपसृतपाणडुपत्राणि = अपसृतानि पाण्डूनि पत्राणि याभ्यः ताः (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा और समासोक्ति अलंकार है। यहाँ आर्या छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थ पञ्चदश साऽऽर्या।।

अर्थात् जिस मात्रिक छन्द के प्रथम पाद में 12 मात्रायें, द्वितीय में 18, तृतीय में 12 और चतुर्थ पाद में 15 मात्रायें होती हैं वहाँ आर्या छन्द होता है।

मूलपाठ –

शकुन्तला – (स्मृत्वा) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये। (ताद, लताबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सं।)

काश्यपः – अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम्। इयं तावद् दक्षिणेन।

शकुन्तला – (उपेत्य लतामालिङ्ग्य) वनज्योत्स्ने, चूतसंगताऽपि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि। (वणजोसिणि, चूदसंगता वि मं पच्चालिंग इदोगदाहिं साहाबाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी द क्खु भविस्सं।)

अनुवाद–

शकुन्तला – (स्मरण करके) पिता जी वनज्योत्स्ना (नाम की लताभगिनी को जो स्नेह होने के कारण बहन जैसी है) से विदाई ले लूँ।

काश्यप – मैं जानता हूँ तेरा उस पर बहन जैसा प्रेम है यह दाहिनी ओर है।

शकुन्तला – (लता के पास जाकर गले लगकर), हे वनज्योत्स्ना (आम्रवृक्ष) से लिपटी हुई होने पर भी तुम इधर-उधर फैली हुई शाखा रूपी भुजाओं से मुझसे गले मिलो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊंगी।

शब्दार्थ – स्मृत्वा = स्मरण करके, आमन्त्रयिष्ये = विदाई ले लूँ, अवैमि = जानता हूँ, सोदर्यास्नेहम् = सगी बहन के तुल्य प्रेम, दक्षिणेन = दाहिनी ओर, उपेत्य = समीप जाकर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवैमि = अव+आ+इ, सोदर्यास्नेहम् = सोदर्यायाः स्नेहः (तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

काश्यपः –

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय–
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः।।13।।

अन्वयः – मया तवार्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदृशं भर्तारं त्वं सुकृतैः गता। इयं नवमालिका चूतेन संश्रितवती। सम्प्रति अहम् अस्यां त्वयि च वीतचिन्तः।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कण्व के द्वारा उनकी पुत्री को योग्य वर प्राप्त हो जाने पर उनकी निश्चिन्तता का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – मेरे द्वारा पहले ही तुम्हारे लिए संकल्पित (किया गया था कि) अपने अनुरूप पति को तुमने अपने पुण्यकर्मों से प्राप्त कर लिया है। यह नवमालिका आम्रवृक्ष से मिल गयी है। अब मैं इसकी तथा तुम्हारी ओर से निश्चिन्त हो गया हूँ।।13।।

व्याख्या – काश्यप कहते हैं कि शकुन्तले मुझे तुम्हारी तथा तुम्हारी बहन वनज्योत्स्ना दोनों की चिन्ता थी मैंने यह पूर्व संकल्प भी किया था कि तुम दोनों को योग्य वर मिले, तुमने अपने भाग्य से अपने अनुरूप वर प्राप्त कर लिया है तथा इस वनज्योत्स्ना ने आम्रवृक्ष को वर के रूप में स्वयं ही चुन लिया है अब मैं तुम्हारे तथा वनज्योत्स्ना के विषय में निश्चिन्त हो गया हूँ।

शब्दार्थ – सङ्कल्पितम् = संकल्प किया था, प्रथममेव = पहले ही, तवार्थे = तेरे लिए, सुकृतैः = पुण्यों के द्वारा, संश्रितवती = मेल को प्राप्त हुई, वीतचिन्तः = चिन्तारहित, निश्चिन्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तवार्थे = तव+अर्थे (दीर्घ सन्धि), संश्रित = सम्+श्रि+क्त, संश्रितवती = संश्रित+मतुप्+ङीप्, वीतचिन्तः = वीता चिन्ता यस्य सः (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, तुल्योगिता और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'** अर्थात् जिस छन्द में एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण हों, वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है। ।।13।।

मूलपाठ –

शकुन्तला – (सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः। (हला, एषा दुवेण वो हत्थे णिक्खेवो।)

सख्यौ – अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। (अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।) **(इति बाष्पं विहरतः।)**

काश्यपः – अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

शकुन्तला – तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। (ताद, एषा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा अणघप्पसवा होइ, तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।)

काश्यपः – नेदं विस्मरिष्यामः।

शकुन्तला – (गतिभङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (को णु क्खु एसो णिवसणे मे सज्जइ।) **(इति परावर्तते।)**

अनुवाद–

शकुन्तला – (सखियों के पास जाकर) सखियों इस लता को तुम दोनों के ही हाथ में सौंप रही हूँ।

दोनों सखियाँ – हम दोनों को किसके हाथों में समर्पित कर रही हो। (यह कहते हुए दोनों रोती हैं।)

काश्यप – अनसूया, तुम लोग मत रोओ, तुम दोनों को तो शकुन्तला को धैर्य बंधाना चाहिये।(सब चारों ओर घूमते हैं।)

शकुन्तला – पिता जी आश्रम में भ्रमण करने वाली गर्भ के भार के कारण धीमी गति वाली हिरणी का जब ठीक से बच्चा हो जाये तब इस प्रिय समाचार को मेरे पास सूचित करायिएगा।

काश्यप – मैं इसको विस्मृत नही करुँगा।

शकुन्तला – (लड़खड़ाने का अभिनय करती हुयी) यह कौन है जो मेरे वस्त्र से लिपटता जा रहा है।(पीछे की ओर मुड़ती है।)

शब्दार्थ – निक्षेपः = धरोहर, विहरतः = डालती है, अलं रुदित्वा = मत रोओ, स्थिरीकर्तव्या = धैर्य बँधाओ, गर्भमन्थरा = गर्भ के भार के कारण शिथिल गति वाली, अनघप्रसवा = बिना किसी कष्ट के प्रसव हो जाए, वसने = वस्त्र।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उटजपर्यन्तचारिणी = उटजस्य पर्यन्ते चरतीति सा, अनघप्रसवा = अनघः विपत्तिरहितः प्रसवः यस्याः सा (बहुव्रीहि समास) स्थिरीकर्तव्या = स्थिर+च्वि+कृ+तव्यत्+टाप्।

मूलपाठ –

काश्यपः – वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां

तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति

सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ।।14।।

अन्वयः – त्वया यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे व्रणविरोपणम् इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत सः अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में काश्यप के द्वारा मृग का शकुन्तला के प्रति प्रेम के कारण उसका मार्ग न छोड़ने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – तुमने जिसके कुशों के अग्रभाग से बिंधे हुए मुख में घावों को भरने वाले हिंगोट के तेल को लगाया था वह यह साँवा (जंगली चावल) की मुट्ठियों से पाला हुआ और पुत्र के समान माना गया हरिण तुम्हारे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है।।14।।

व्याख्या – काश्यप शकुन्तला से कहते हैं पुत्री तुमने जिस हरिण को पुत्र के समान इतने स्नेह से पाला था उसके मुख में कुश चुभ गया था तो तुमने हिंगोट का तेल लगाया था, तुम उसको हर रोज सांवा (जंगली चावल) खिलाकर उसका पेट भरती थी आज जब तुम जा रही हो तो तुम्हारे वियोग में दुःखी वह तुम्हारा रास्ता रोक रहा है, तुम्हे जाने नहीं दे रहा है।

शब्दार्थ – व्रणविरोपणम् = घावों को भरने वाला, न्यषिच्यत् = लगाया, कुशसूचिविद्धे = कुशों के अग्रभाग से बिंधे हुए, पुत्रकृतकः = पुत्रवत् माना गया, मुखे = मुख में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – व्रणविरोपणम् = व्रणानां विरोपणम् (तत्पुरुष समास), विरोपण = वि+रुह्+णिच्+ल्युट्, कुशसूचिविद्धे = कुशानां सूचिभिः विद्धे (तत्पुरुष समास), विद्ध = व्यध्+क्त, श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको = श्यामाकानां मुष्टिभिः परिवर्धितकाः (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

शकुन्तला – वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्। (वच्छ, किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।) **(इति रुदती प्रस्थिता।)**

अनुवाद –

शकुन्तला – पुत्र, (तुम्हारे साथ का) परित्याग करके जाने वाली मुझे क्यों पकड़ रहे हो। (मेरे पीछे क्यों आ रहे हो) प्रसव के बाद ही माता की मृत्यु होने के पश्चात् मेरे द्वारा ही तुम पाले गये हो ठीक उसी प्रकार से अब मुझसे वियुक्त होने पर पिता जी तुम्हारा पालन करेंगे।

शब्दार्थ – वत्स = पुत्र, सहवासपरित्यागिनीम् = साथ छोड़ने वाली, अचिरप्रसूतया = जन्म देने के कुछ ही समय बाद मृत, जनन्या = माता, विरहितम् = वियुक्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सहवासपरित्यजन्तीम् = सहवासं परित्यजतीति, सहवास+परि+त्यज्+घिनुण् (इन्), ताम्, अचिरप्रसूतया = अचिरं प्रसूता तया (कर्मधारय समास)।

मूलपाठ –

काश्यपः –

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं
बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम् ।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ।।15।।

अन्वयः – उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्तिं बाष्पं स्थिरतया शिथिलानुबन्धं कुरु। अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन्मार्गे ते पदानि खलु विषमीभवन्ति।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में काश्यप द्वारा शकुन्तला को धैर्य धारण कराने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – ऊपर की ओर उठी हुई बरौनियों वाले नेत्रों की दर्शन शक्ति को रोकने वाले आँसू को धैर्य धारण कर रोको, ऊँची नीची भूमि को न देखने के कारण इस मार्ग में तुम्हारे पैर वस्तुतः लड़खड़ा रहे हैं।।15।।

व्याख्या – काश्यप शकुन्तला को धैर्य धारण कराते हुए कहते हैं तुम्हारी ऊपर उठी हुई भौहें आँखों में भरे हुए आँसुओं के कारण तुम्हारे नेत्र देखने में असमर्थ हो रहे हैं धैर्य धारण करो आँसुओं को रोको। ठीक से न देखने से इस उबड़-खाबड़ जमीन पर तुम्हारे पैर लड़खड़ा रहे हैं।

शब्दार्थ – उत्पक्ष्मणोः = ऊपर को उठी हुई बरौनी से युक्त, उपरुद्ध = रोकने वाली, वृत्ति = व्यापार, विरतानुबन्धम् = जिसका प्रवाह रुक गया है ऐसा, विषमीभवन्ति = लड़खड़ा रहे हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्पक्ष्मणोः = उद्गतानि पक्ष्माणि ययोः तयोः (बहुव्रीहि समास), विरतानुबन्धम् = विरतः अनुबन्धः यस्य तम् (बहुव्रीहि समास), अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे = अलक्षितः नतः उन्नतः भूम्याः भागः यस्मिन् तस्मिन् (बहुव्रीहि समास), विरत = वि+रम्+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

शाङ्र्गरवः – भगवन्, ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि।

काश्यपः – तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। (सर्वे परिक्रम्य स्थिताः।)

काश्यपः – (आत्मगतं) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपम् अस्माभिः सन्देष्टव्यम्। (इति चिन्तयति)

शकुन्तला – (जनान्तिकम्) हला, पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति, दुष्करमहं करोमीति। (हला, पेक्ख। णलिणीपत्तन्तरिदं वि सहअरं अदेक्खन्ती आदुरा चक्कवाई आरडदि , दुक्करं अहं करोमि त्ति।)

अनसूया – सखि, मैवं मन्त्रयस्व। (सहि, मा एव्वं मन्तेहि।)

अनुवाद–

शाङ्र्गरव – भगवन्, जलाशय तक प्रिय व्यक्ति को छोड़ने जाना चाहिए ऐसा सुना जाता है। तो यह तालाब का किनारा है (अतः) यहाँ से हम लोगों को आदेश देकर वापस चले जायें।

काश्यप – तब इस वटवृक्ष की छाया का आश्रय लेते हैं अर्थात् बैठते हैं। (सभी चारों ओर घूमकर बैठते हैं।)

काश्यप – (मन में) माननीय दुष्यन्त को क्या सन्देश भेजना चाहिए? (सोचने का अभिनय करते हैं।)

शकुन्तला – (हाथ की ओट में) सखी, इधर देखो। कमलिनी के पत्ते की ओट में बैठे हुए भी सहचर (चकवा) को न देखकर यह चकवी व्याकुल होकर चिल्ला रही है कि मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ।

अनसूया – सखि, ऐसा न कहो।

शब्दार्थ – ओदकान्तम् = जल के किनारे तक, सन्दिश्य = सन्देश देकर, श्रूयते = ऐसी कहावत है, क्षीरवृक्ष = पीपल का वृक्ष, युक्तरूपम् = अत्यन्त सुन्दर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – ओदकान्तम् = उदकस्य अन्तः उदकान्तः, आ उद्कान्तात् ओदकान्तम्, (यहाँ पर 'आङ् मर्यादाभिविध्यौः' सूत्र से अव्ययीभाव समास मर्यादा अर्थ में है), सन्दिश्य = सम्+दिश्+क्त्वा (क्त्वा को ल्यप्)।

मूलपाठ –

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।

गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति।।16।।

(एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं।

ग्रुअं पि विरहदुक्खं आसबन्धो सहावेदि।।)

अन्वयः – एषा अपि प्रियेण विना विषाददीर्घतरां रजनीं गमयति। आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखं साहयति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में अनसूया के द्वारा चकवी के प्रिय मिलन की आशा में कठोर दुःख सहन का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – यह चकवी भी प्रिय के बिना दुःख के कारण अत्यधिक लम्बी प्रतीत होने वाली रात व्यतीत करती है। आशा का बन्धन वियोग के कठोर दुःख को भी सहन करा देता है।।16।।

व्याख्या – अनसूया कहती है सखि, आशा का जो बन्धन होता है वो कठिन से कठिन दुःख को सहन करने का साहस प्रदान करता है। यह चकवी भी प्रिय मिलन की आशा में ही प्रिय विरह में अत्यधिक लम्बी रात भी व्यतीत कर पा रही है।

शब्दार्थ – एषापि = यह भी, प्रियेण विना = प्रिय के बिना, दुष्करम् = कठिन, विषाद = दुःख, रजनीम् = रात्रि, गुर्वपि = अधिक लम्बी भी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विषाददीर्घतराम् = विषादेन दीर्घतराम् (तृतीया तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार और आर्या छन्द है।

मूलपाठ –

काश्यपः – शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

शार्ङ्गरवः – आज्ञापयतु भवान् ।

अनुवाद–

काश्यप – शाङ्र्गरव, तुम शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से राजा से इस प्रकार कहना।

शाङ्र्गरव – आप आदेश करें।

शब्दार्थ – त्वया = तुम, मद्वचनात् = मेरी ओर से, पुरस्कृत्य = आगे करके, आज्ञापयतु = आदेश दीजिए, भवान् = आप।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मद्वचनात् = ल्यब् लोपे पञ्चमी, पुरस्कृत्य = पुर+कृ+क्त्वा,ल्यप्, वक्तव्यः = वच्+तव्यत्।

मूलपाठ –

काश्यपः –

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन–
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।17।।

अन्वयः – संयमधनान् अस्मान् आत्मनः उच्चैः कुलं च, त्वयि अस्याः कथम् अपि अबान्धवकृतां तां स्नेहप्रवृत्तिं च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकं दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्, तत् खलु वधुबन्धुभिः न वाच्यम्।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में काश्यप के द्वारा शाङ्र्गरव के माध्यम से राजा के प्रति दिये गये सन्देश का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – संयमरूपी धन वाले हम लोगों को अपने ऊँचे कुल का तुम्हारे प्रति इस (शकुन्तला) के किसी प्रकार भी बन्धुओं के लिए जो न किया जाए उस स्वाभाविक प्रणय व्यापार का भली-भाँति विचार करके तुम इसको (प्रदान करना) (अन्य) स्त्रियों में सबके समान गौरव (आदर) के साथ देखना। इसके आगे (अत्यन्त आदर पाना तो) भाग्य के अधीन है वह तो कन्या के बन्धुओं द्वारा नहीं मांगा जाता।।17।।

व्याख्या – महर्षि काश्यप शाङ्र्गरव से दुष्यन्त के प्रति सन्देश को समझाते हुए कहते हैं कि हम लोग कन्या पक्ष के हैं, अतः हम अपनी कन्या के लिये जितना उचित है उतना ही कह सकते हैं। हे राजन्! आप संयम रूपी धन वाले हम लोगों का अपने ऊँचे कुल का और तुम्हारी ओर इस शकुन्तला के द्वारा न किये गये उस स्वाभविक प्रेम व्यापार का भली-भाँति विचार करके इसको अपनी सभी स्त्रियों में समान भाव से गौरव के साथ देखना अर्थात् भेद-भाव न करना इसके आगे महारानी बनना आदि तो भाग्य के अधीन है उसको हम नहीं कहेंगे।

शब्दार्थ – साधु = ठीक, विचिन्त्य = विचार करके, संयम धनः = संयम रूपी धन वाले, उच्चैः = ऊँचे, स्नेहप्रवृत्तिम् = प्रेम के संचार को, दारेषु = स्त्रियों में, भाग्यायत्तम् = भाग्य के अधीन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संयमधनः = संयम एव धनं येषां तान् (बहुव्रीहि समास), अबान्धवकृताम् = न बान्धवैः कृताम् (तत्पुरुष समास), स्नेहप्रवृत्तिम् = स्नेहस्य प्रवृत्तिम् (तत्पुरुष समास), आयत्त = आ+यत्+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। यहाँ शार्दूलविकीडित छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है– **'सूर्याश्वैर्मसजस्ताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'** अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, दो तगण और एक गुरु वर्ण हो, बारहवें और सातवें वर्ण पर यति हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है।

मूलपाठ –

शार्ङ्गरवः – गृहीतः सन्देशः।

काश्यपः – वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

शार्ङ्गरवः – भगवन्! न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।

अनुवाद–

शार्ङ्गरव – यह (उपरोक्त) सन्देश ग्रहण किया गया।

काश्यप – पुत्री, अब तुम्हें भी कुछ शिक्षा देनी है। वनवासी होते हुए भी हम लोग लौकिक व्यवहारों को जानते हैं।

शार्ङ्गरव – बुद्धिमानों के लिये कोई भी बात अज्ञात नहीं होती है अर्थात् सब कुछ अनायास ही ज्ञात होता है।

शब्दार्थ – वनौकसः = वनवासी होते हुए, लौकिकज्ञाः = लौकिक व्यवहारों को जानते हैं, वयम् = हम, धीमताम् = विद्वान्।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – लौकिक = लोके भवं लौकिकम्, लोक+ठञ् (इक्), लौकिकज्ञाः = लौकिकं जानन्तीति, लौकिक+ज्ञा+क (अ)।

मूलपाठ –

काश्यपः – सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य –

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।18।।

कथं वा गौतमी मन्यते।

अन्वयः – गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिं कुरु, विप्रकृता अपि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव, भाग्येषु अनुत्सेकिनी (भव) एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामाः कुलस्य आधयः(भवन्ति)।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कण्व के द्वारा दी गयी शकुन्तला को श्रेष्ठ वधू की शिक्षा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद –

काश्यप – तू यहाँ से पतिगृह पहुँचकर

गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नियों (सौतों) के साथ प्रियसखी जैसा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के कारण पति के प्रतिकूल कार्य नहीं करना, सेवकों के प्रति अत्यधिक उदार रहना, अपने भाग्य पर अभिमान न करना, इस प्रकार की स्त्रियाँ

गृहिणी के पद को प्राप्त कर लेती हैं (और इससे) विपरीत आचरण करने वाली कुल के लिए अभिशाप होती हैं।।18।।

(इस आदेश के विषय में) गौतमी का क्या विचार है।

व्याख्या – पिता का धर्म निर्वाह करते हुए कण्व शकुन्तला को एक श्रेष्ठ वधू होने का उपदेश करते हैं।

शब्दार्थ – शुश्रूषस्व = सेवा करना, गुरून् = गुरुजनों की, सपत्नीजने = सौतों के साथ, विप्रकृताऽपि = तिरस्कृत होने पर भी, रोषणतया = क्रोध के आवेश में आकर, प्रतीपम् = प्रतिकूल, भूयिष्ठम् = अत्यधिक, दक्षिणा = उदार, युवतयः = स्त्रियाँ, वामाः = विपरीत आचरण करने वाली।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शुश्रूषस्व = श्रु+सन् (लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन), प्रियसखीवृत्तिम् = प्रियायाः सख्याः वृत्तिम् (तत्पुरुष समास), विप्रकृता = वि+प्र+कृ+क्त+टाप्, भूयिष्ठम् = बहु+इष्ठन्, उत्सेक = उत्+सिच्+घञ्।

प्रस्तुत श्लोक में रूपक, हेतु और अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

गौतमी – एतवान् वधूजनस्योपदेशः। जाते, एतत् खलु सर्वमवधारय। (एत्तिओ वहूजणस्स उवदेसो। जादे, एदं क्खु सव्वं ओधारेहि।)

काश्यपः – वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च।

शकुन्तला – तात, इत एव किं प्रियंवदाऽनसूये सख्यौ निवर्तिष्येते? (ताद, इदो एव्व किं पिअंवदाअणसूआओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति।)

काश्यपः – वत्से, इमे अपि प्रदेये, तन्न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

शकुन्तला – (पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि? (कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्टा मलअतुडुम्मूलिआ चन्दणलदा विअ देसन्तरे जीविअं धारइस्सं।)

अनुवाद–

गौतमी – नववधुओं के लिए इतना उपदेश आवश्यक है। पुत्री, इसको हृदय में धारण करो।

काश्यप – पुत्री, आओ मुझसे तथा अपनी सखियों से गले लग जाओ।

शकुन्तला – पिता जी क्या यहीं से ही प्रियसखियाँ लौट जायेंगी?

काश्यप – पुत्री, यह दोनों अनसूया और प्रियंवदा का भी परिणय होगा तो इन दोनों का जाना ठीक नहीं है। तुम्हारे साथ गौतमी जायेगी।

शकुन्तला – (पिता जी का आलिङ्गन कर) मलयपर्वत से उखाड़ी गयी चन्दनलता के समान पिता जी के गोद से अलग होकर दूसरे देश में कैसे जीवित रह सकूंगी।

शब्दार्थ – एतावान् = इतनी ही, अवधारय = ठीक से समझ लो, आश्लिष्य = आलिंगन कर, मलयतटोन्मूलिता = मलयपर्वत से उखाड़ी गई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – एतावान् = एतद्+वतुप् (प्रमाणे), देशान्तरे = अन्योः देशः देशान्तरम् (मयूरव्यंसक समास) तस्मिन्।

मूलपाठ –

काश्यपः – वत्से, किमेवं कातराऽसि।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे

विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।

तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं

मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।।।19।।

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति)

अन्वयः – वत्से, त्वम् अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला, अचिरात् च प्राची अर्कम् इव पावनं तनयं प्रसूय मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कण्व कहते हैं कि पुत्री तुम इतनी व्याकुल न हो ससुराल में होने वाले सुखों को पाकर तुम मेरे वियोग के दुख को भूल जाओगी।

अनुवाद–

काश्यप – पुत्री, तुम इस प्रकार क्यों व्याकुल हो रही हो।

हे पुत्री, तुम उत्तम कुल वाले पति के प्रशंसनीय गृहस्वामिनी के पद पर स्थित होकर उसके ऐश्वर्य के कारण महत्त्वपूर्ण कार्यों में प्रतिक्षण व्यस्त रहती हुई और शीघ्र ही पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य को जन्म देती है (उसी प्रकार) पवित्र पुत्र को जन्म देकर मेरे वियोग से उत्पन्न दुःख को नहीं गिनोगी अर्थात् तुम भूल जाओगी।।।19।।

(पिता जी के चरणों में गिरकर)

व्याख्या – शकुन्तला के अधिक दुःखी होने पर काश्यप समझाते हुए कहते हैं कि पुत्री तुम पति के प्रशंसनीय गृहस्वामिनी (पत्नी) के पद पर रहते हुए, पति के ऐश्वर्य पूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते उत्तम पवित्र पुत्र को जन्म देकर मेरे प्रति हो रहे दुःख को भूल जाओगी।

शब्दार्थ – अभिजनवतः = महाकुलीन, श्लाघ्ये = प्रशंसनीय, प्राची = पूर्व दिशा, अर्कम् = सूर्य, पावनम् = पवित्र, विरहजाम् = वियोग से उत्पन्न।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विभवगुरुभिः = विभवेन गुरुभिः (तृतीया तत्पुरुष समास), तनयम् = तनोति कुलं, तन्यते वा, गृहिणीपदे = गृहिण्याः पदे (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा, समुच्चय और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ हरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **'नमसरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।'** अर्थात् जिस छन्द में एक नगण, एक सगण, एक मगण, एक रगण, एक सगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हों, 6-4 और वर्णों पर यति हो वहाँ हरिणी छन्द होता है।

मूलपाठ –

काश्यपः – यदिच्छामि ते तदस्तु।

शकुन्तला – (सख्यावुपेत्य) हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्। (हला, दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह।)

सख्यौ – (तथा कृत्वा) सखि, यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्, ततस्तस्मा इदमात्मनानामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय। (सहि, जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे, तदो से इमं अत्तणामहेअअंकिअं अंगुलीअअं दंसेहि।)

शकुन्तला – अनेन सन्देहेन वामाकम्पिताऽस्मि। (इमिणा संदेहेण वो आकम्पिदम्हि।)

सख्यौ – मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशङ्की। (मा भाआहि अदिसिणेहो पावसंकी।)

शाङ्र्गरवः – युगान्तरमारूढः सविता। त्वरतामत्रभवतीम्।

शकुन्तला – (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात, कदा नु खलु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये। (ताद, कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं।)

अनुवाद–

काश्यप – पुत्री, मैं (तुम्हारे लिए) जो चाहता हूँ तुमको वह सब प्राप्त हो।

शकुन्तला – (सखियों के पास जाकर) आओ तुम दोनों भी एकसाथ ही मेरे गले लग जाओ।

दोनों सखियाँ – (उस प्रकार करके) यदि वह राजा (दुष्यन्त) पहचानने से इन्कार करें तब उनका नाम लिखी हुई अँगूठी को दिखा देना।

शकुन्तला – तुम्हारे इस सन्देह से मैं घबरा गई हूँ।

दोनों सखियाँ – डरो नही। अत्यधिक प्रेम अमङ्गल की आशंका करता है।

शाङ्र्गरव – सूर्य दूसरे प्रहर में चढ गया है। अब आप शीघ्रता करें।

शकुन्तला – (आश्रम की ओर देखकर) अब कब इस आश्रम को देख पाऊंगी।

शब्दार्थ – इच्छामि = चाहता हूँ, सन्देहेन = सन्देह से, प्रत्यभिज्ञान = पहचानने में, सविता = सूर्य, प्रक्षिष्ये = देखूँगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सन्देह =सम्+दिह्+घञ्, सविता = सू+तृच्।

मूलपाठ –

काश्यपः – वत्से,

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी

दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेशय।

भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं

शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।।20।।

अन्वयः – चिराय चतुरन्तन्तमहीसपत्नी भूत्वा, अप्रतिरथं तनयं दौष्यन्तिं निवेशय तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धं शान्ते अस्मिन् आश्रमे पुनः पदं करिष्यसि।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कण्व के द्वारा शकुन्तला के पूछे गये प्रश्न कि पुनः इस तपोवन के दर्शन कब होंगे इस उत्तर का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – चिरकाल तक दिशाओं समेत पृथ्वी की सपत्नी होकर, अपने अद्वितीय पुत्र को दुष्यन्त के पुत्र (भरत) को जन्म देकर उस पुत्र पर साम्राज्य का भार सौंपने के बाद पति के साथ ही शान्त आश्रम में पुनः आकर निवास करोगी।।20।।

व्याख्या – काश्यप कहते हैं चिरकाल तक पृथ्वी की सपत्नी होकर अर्थात् साम्राज्ञी होकर अपने समस्त दायित्वों का निर्वाह कर लेने वाले दुष्यन्त के पुत्र को जन्म देकर राज्य भार उसे देकर पति के साथ वानप्रस्थ आश्रम में यहीं आकर निवास करोगी।

शब्दार्थ – चिराय = चिरकाल तक, मही = पृथ्वी, तनयम् = पुत्र, सार्धम् = साथ, प्रतिरथ = प्रतिद्वन्द्वी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – चतुरन्तमहीसपत्नी = चत्वारः अन्ताः यस्याः तादृश्याः मह्याः सपत्नी (बहुव्रीहिगर्भ तत्पुरुष समास), दौष्यन्तिम् = दुष्यन्तस्य पुत्रः दौष्यन्तिः, तम्। दुष्यन्त+इञ्, अप्रतिरथम्, = न विद्यते प्रतिरथः प्रतिद्वन्द्वी यस्य सः तम् (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में मालादीपक अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

गौतमी – जाते, परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्, अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्। (जादे, परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मन्तइस्सदि। णिवत्तदु भवं।)

काश्यपः – वत्से, उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।

शकुन्तला – (भूयः पितरमाश्लिष्य) तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्म्। तन्मातिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व। (तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं। ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कण्ठस्स।)

अनुवाद–

गौतमी – पुत्री, हमारे जाने का समय बीता जा रहा है। अतः अब पिताजी को लौटाओ। अथवा यह शकुन्तला तो चिरकाल तक पुनः पुनः उसी बात को कहती रहेगी। (इसलिए) आप लौटिए।

काश्यप – पुत्री मेरा तप का अनुष्ठान रुक रहा है।(अब मुझे जाने दो।)

शकुन्तला – (फिर पिता से लिपट कर) पिताजी आपका शरीर तपस्या के कारण अत्यन्त कृश है। इसलिये आप मेरे लिये दुःखी न हों।

शब्दार्थ – परिहीयते = छोड़ रही है, उपरुध्यते = मेरे तप का अनुष्ठान रुक रहा है, गमनवेला = प्रस्थान का समय, निवर्तय = लौटाओ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – परिहीयते = परि+हा से कर्मकर्ता में लट्, गमनवेला = गमनस्य वेला (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

काश्यपः – सनिःश्वासम्।

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।

उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ।।21।।

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। (निष्क्रान्ताः शकुन्तला सहयायिनश्च।)

अन्वयः – वत्से, त्वया रचित पूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति।

प्रसंग– अन्तिम बार काश्यप शकुन्तला को आलिङ्गन कर अपना दुःख व्यक्त करते हुए कहते हैं–

अनुवाद–

काश्यप – लम्बी श्वास लेकर।

हे पुत्रि, तुम्हारे द्वारा पहले पूजा के लिए डाले गए (और अब) पर्णकुटी के द्वार पर उगे हुए नीवार के उपहार को देखते हुए मेरा शोक भला कैसे शान्त हो सकेगा?।।21।।

जाओ तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो। (शकुन्तला और उसके साथ जाने वालों का प्रस्थान।)

व्याख्या – काश्यप अपने कारुणिक भाव को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं पुत्री तुम्हारे द्वारा डाले गये पूजा के नीवार(धान) अब जो कुटी के द्वार पर उग गये हैं, उन्हें देखकर मेरा शोक भला कैसे दूर हो सकेगा अर्थात् किसी प्रकार नहीं दूर हो सकेगा जब जब मैं नीवार को देखूंगा तुम्हारा स्मरण कर शोक बढता ही जायेगा।

शब्दार्थ – रचितपूर्वम् = तेरे द्वारा पहले डाले हुए, उटजद्वारविरूढम् = कुटी के द्वारा पर उगे हुए, शमम् = शान्ति, शोक = विषाद।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रचितपूर्वम् = पूर्व रचितम् (सुप्सुपा समास), उटजद्वारविरूढम् = उटजस्य पर्णशालायाः द्वारे प्रवेशे विरूढम् अङ्कुरितम् (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ आर्या छन्द है।

मूलपाठ –

सख्यौ – (शकुन्तलां विलोक्य) हा धिक् हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। (हद्धी, हद्धी। अन्तलिहिदा सउन्दला वणराईए।)

काश्यपः – (सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

उभे – तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः। (ताद, सउन्लाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसामो।)

काश्यपः – स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। (सविमर्श परिक्रम्य) हन्त भोः, शकुन्तलां पतिगृहे विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः –

अनुवाद–

दोनों सखियाँ – (शकुन्तला की ओर देखकर) हाय, हाय, शकुन्तला वन की पंक्तियों में छिप गयी।

काश्यप – अनसूया, तुम दोनों की सहेली चली गयी। (अपने) शोक के आवेग को ग्रहण करके मेरा अनुसरण करो।

दोनों सखियाँ – पिता जी, शकुन्तला के नहीं रहने पर सूने तपोवन में कैसे प्रवेश करें।

काश्यप – प्रेम भाव (वस्तुओं को) दिखाता है। (विचारमग्न हो चारों ओर घूमकर) अहा शकुन्तला को पति के घर भेजकर मुझे अब मानसिक शान्ति प्राप्त हुई है।

शब्दार्थ – अन्तर्हिता = ओझल हो गयी, सहचारिणी = सखी, निगृह्य = रोककर, शून्यमिव = सूना सा हो गया है, विसृज्य = भेजकर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अन्तर्हिता = अन्तर्+धा+क्त+टाप्, सहचारिणी = सह चरतीति, सह+चर्+णिनि, निगृह्य = नि+गृह्+ल्यप्।

मूलपाठ –

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।।22।।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

अन्वयः – कन्या हि परकीय एव अर्थः, अद्य तां परिग्रहितुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यास प्रकामं विशदः जातः।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में शकुन्तला को विदा करने के पश्चात् कण्व को होने वाली मानसिक शान्ति का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – कन्या वस्तुतः पराया ही धन है आज उसको पति के पास भेजकर मेरे (काश्यप का) यह हृदय मानो किसी की कोई धरोहर लौटा दिया हो उस प्रकार अत्यधिक प्रसन्न हो गया है।।22।।

व्याख्या – कण्व का कथन है कि कन्या रूपी धन दूसरे का ही होता है। उसे उसके प्राप्तकर्ता को दे देने पर अन्तरात्मा उसी प्रकार प्रसन्न होती है जैसे धरोहर को लौटा देने पर उसको रखने वाले व्यक्ति का मन प्रसन्न होता है।

शब्दार्थ – कन्या = पुत्री, परिग्रहीतुः = पति के पास, विशदः = स्वच्छ, प्रत्यर्पितः = लौटा दी है, न्यास = धरोहर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विशदान्तरात्मा = विशदः अन्तरात्मा यस्य सः (बहुव्रीहि समास), प्रत्यर्पितन्यासः = प्रत्यर्पितः न्यासः येन सः (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ इन्द्रवज्रा छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।'** अर्थात् जिस छन्द में दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु वर्ण हों वहाँ इन्द्रवज्रा छन्द होता है।

(सबका प्रस्थान)

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित में सत्य ☑ तथा असत्य ☒कथन का चयन कीजिए –

i) शकुन्तला की लताभगिनी वनज्योत्स्ना है – ( )

ii) 'ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तत्यः' गौतमी का कथन है – ( )

iii) 'अतिस्नेहः पापशङ्की' कण्व का कथन है – ( )

iv) शकुन्तला को पतिगृह भेजकर कण्व मानसिक शान्ति का अनुभव करते हैं – ( )

2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

i) शकुन्तला वनज्योत्स्ना को किसके हाथों में सौंपती है?

ii) सभी लोग किस वृक्ष के नीचे बैठते हैं?

iii) प्रिय के बिना अधिक लम्बी रात्रि को कौन व्यतीत करती है?

iv) शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर कौन-कौन जाता है?

v) 'अनुमतगमना' पद में कौन सा समास है।

अभ्यास प्रश्न

1) 'सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

2) 'अस्मान् साधु विचिन्त्य' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

15.3 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! आप जानते हैं कि 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का चतुर्थ अंक संस्कृत साहित्य में विशेष स्थान रखता है। आपने पूर्व इकाई में शकुन्तला के पतिगृहगमन से सम्बन्धित विषय का अध्ययन किया। शकुन्तला अपनी विदायी के अवसर पर अत्यन्त दुःखी है। आश्रम के मृग, मयूर एवं लतायें भी अपने शोक को प्रकट करती हैं। महाकवि कालिदास ने इस अंक में प्रकृति के मानवीकरण का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। शकुन्तला अपनी लताभगिनी वनज्योत्सना का आलिंगन करती है। वह हरिणी के प्रसव की सूचना हस्तिनापुर भेजने के लिए कहती है। वह मृग के प्रति अपना स्नेह प्रकट करती है। इस प्रकार वह आश्रम के वृक्षों और पशुओं के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है। कण्व और शकुन्तला की सखियाँ भी शकुन्तला की विदायी के अवसर पर दुःखी हैं। कण्व शकुन्तला और दुष्यन्त को भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा देते हैं। तत्पश्चात् वे शकुन्तला को विदा करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

15.4 शब्दावली

कातरः – दुःखित

दर्भ – कुश

अवैमि – जानता हूँ

वीतचिन्तः – चिन्तारहित

वसने – वस्त्र

मुखे	–	मुख में
विरहितम्	–	वियुक्त
वृत्ति	–	व्यापार
दुष्करम्	–	कठिन
पुरस्कृत्य	–	आगे करके
धीमताम्	–	विद्वान्
वामाः	–	विपरीत
श्लाघ्ये	–	प्रशंसनीय
विसृज्य	–	भेजकर
मही	–	पृथ्वी

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, व्याख्या० पं. शिवप्रसाद द्विवेदी।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, व्याख्या० सुधाकर मालवीय।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, व्याख्या० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'।

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) (i) सत्य (ii) असत्य (iii) असत्य (iv) सत्य

2) i) शकुन्तला वनज्योत्सना को सखियों के हाथों में सौंपती है।

ii) सभी लोग क्षीरवृक्ष के नीचे बैठते हैं।

iii) प्रिय के बिना अधिक लम्बी रात्रि चकवी व्यतीत करती है।

iv) शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर शाङ्र्गरव, शारद्वत् और गौतमी जाती है।

v) 'अनुमतगमना' पद में बहुव्रीहि समास है।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।